5

सुविख्यात सांसद मोनोग्राफ सीरीज

पनमपिल्ली गोविन्द मेनन

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
1990

सुविख्यात सांसद
मोनोग्राफ सीरीज

पनमपिल्ली गोविन्द मेनन

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
1990

© लोक सभा सचिवालय, 1990

अक्तूबर, 1990

मूल्य : 30.00

लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम (सातवां संस्करण) के नियम 382 के अन्तर्गत प्रकाशित तथा प्रबन्धक, फोटो लिथो विंग, भारत सरकार मुद्रणालय, मिन्टो रोड, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

यह एक अच्छी बात है कि भारतीय संसदीय ग्रुप ने सुविख्यात सांसदों की वर्षगांठें मनाने का निर्णय किया ताकि देश के संसदीय जीवन और राजनीति के क्षेत्र में उनके योगदान को स्मरण किया जा सके और उसे लेखनीबद्ध किया जा सके। इस क्रियाकलाप के एक अंग के रूप में मार्च, 1990 में "सुविख्यात सांसद मोनोग्राफ सीरीज" नाम से एक मोनोग्राफ श्रृंखला प्रारम्भ की गई है जिसके अन्तर्गत सबसे पहले डा० राम मनोहर लोहिया पर मोनोग्राफ प्रकाशित किया गया था। तत्पश्चात् डा० लंका सुन्दरम, डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी और पंडित नीलकंठ दास की वर्षगांठों के अवसरों पर मोनोग्राफ प्रकाशित किए गए हैं।

वर्तमान मोनोग्राफ — जो इस श्रृंखला का पांचवां मोनोग्राफ है — श्री पनमपिल्ली गोविन्द मेनन द्वारा समाज के प्रति की गई सेवाओं को स्मरण करने का एक छोटा सा प्रयास है। श्री मेनन न केवल एक योग्य प्रशासक, ओजस्वी वक्ता और विख्यात वकील ही थे वरन् एक लब्धप्रतिष्ठ सांसद भी थे।

इस मोनोग्राफ के दो भाग हैं, भाग-एक में श्री गोविन्द मेनन का संक्षिप्त जीवन वृत्त है। मोनोग्राफ के भाग-दो में श्री मेनन द्वारा लोक सभा और राज्य सभा में दिये गये कुछ चुनींदा भाषणों के उद्धरण सम्मिलित किए गए हैं।

उनकी वर्षगांठ के अवसर पर हम उनकी स्मृति में अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और आशा करते हैं कि यह मोनोग्राफ उपयोगी एवं रुचिकर सिद्ध होगा।

नई दिल्ली,
दिसम्बर, 1990

रबि राय
अध्यक्ष, लोक सभा
तथा
प्रेसीडेंट, भारतीय संसदीय ग्रुप

विषय सूची

प्राक्कथन

भाग—एक

श्री पनमपिल्ली गोविन्द मेनन

जीवन वृत्त

1

भाग—दो

उनके विचार

श्री मेनन द्वारा लोक सभा/राज्य सभा में दिए गए कुछ चुनींदा भाषणों से उद्धरण।

2

संविधानिक, संसदीय तथा विधायी मामले

— नई संविधान सभा का गठन

— संविधान का संशोधन

— राज्य सभा तथा राज्य विधान परिषदों के लिए सदस्य नामनिर्देशित करने की राष्ट्रपति की शक्ति

— न्यायपालिका और संसदीय विशेषाधिकार

— भारतीय रजिस्ट्रीकरण (संशोधन) विधेयक, 1968

(9)

3

सेवाओं सम्बन्धी मामले

— हड़ताल का अधिकार

— आवश्यक सेवाएं बनाए रखने का विधेयक, 1968

(41)

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का कल्याण

— अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों संबंधी समिति

— लोक सभा और राज्य विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों तथा आँग्ल-भारतीयों के लिए सीटों के आरक्षण की अवधि बढ़ाना।

(49)

5

हिन्दी भाषा को प्रोत्साहन

(62)

6

अकाल की स्थिति

(65)

भाग—एक

पनमपिल्ली गोविन्द मेननः

जीवन वृत्त

1

श्री पनमपिल्ली गोविन्द मेननः जीवन वृत्त

एक प्रतिष्ठित संसद विद्, कुशल प्रशासक, मंत्र मुग्ध करने वाला वक्ता और सुविख्यात वकील श्री पनमपिल्ली गोविन्द मेनन का जन्म 1 अक्तूबर, 1908 को त्रिचुर जिले में चालाकुडी के निकट एक गांव कक्काडू में हुआ था। उन्होंने अपनी स्कूली शिक्षा त्रिचूर जिले में चेन्नाममगलम् हाई स्कूल और एर्नाकुलम में महाराजा हाई स्कूल से ग्रहण की। सैन्ट थामस कालेज से कालेज की शिक्षा प्राप्त करने के अतिरिक्त उन्होंने सैन्ट जोसफ कालेज, त्रिची से भौतिकी में डिग्री और लॉ कालेज, मद्रास से कानून में डिग्री प्राप्त की। उन्होंने वर्ष 1932 में इरिंजलाकुड्डा में वकील के रूप में वकालत आरंभ की और बाद में 1939 में वे केरल उच्च न्यायालय, एर्नाकुलम में वकालत करने लगे।

श्री पनमपिल्ली छात्र जीवन से ही राजनीति में रुचि लेने लगे थे। उन्होंने वाइकम सत्याग्रह तथा अन्य राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लिया। यह स्वाभाविक है कि बाद में उनके लिए राजनीति से दूर रहना असंभव हो गया और वे प्रजामंडलम के सक्रिय सदस्य बन गए और बाद में वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल हो गए। उन्होंने केरल प्रदेश कांग्रेस समिति और अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के सदस्य के रूप में सेवा की। जब, 1969 में कांग्रेस का विभाजन हुआ तो वे श्रीमती इंदिरा गांधी के साथ मिल गए। वे मृत्युपर्यंत, अर्थात् 23 मई, 1970 तक कांग्रेसी रहे।

श्री मेनन के राजनीतिक जीवन की महत्वपूर्ण शुरूआत मद्यनिषेध आन्दोलन और विदेशी कपड़ों के बहिष्कार अभियान में भाग लेने के साथ हुई। वह एक उत्तरदायी सरकार बनाने के उद्देश्य से गठित कोचीन राज्य प्रजामंडल नामक संगठन के अग्रणी सदस्य थे और निरन्तर संगठन के प्रमुख सक्रिय कार्यकर्ता बने रहे। वर्ष 1935 में उन्हें कोचीन राज्य विधानमंडल में चुना गया और 1938 में पुनः चुने गए। उन्होंने 1942 में तत्कालीन कोचीन सरकार की दमनकारी नीति के विरोध में विधानमंडल की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। उसी वर्ष उन्हें गिरफ्तार किया गया और दस महीने के लिए वियूर सेंट्रल जेल में रखा गया। वे 1945 में प्रजामंडल के उम्मीदवार के रूप में एर्नाकुलम निर्वाचन क्षेत्र से पुनः कोचीन विधान सभा के सदस्य बने। वे सितम्बर, 1946 में कोचीन सरकार में खाद्य मंत्री बने।

स्वतत्रता प्राप्ति के बाद श्री मेनन अगस्त, 1947 में तत्कालीन राज्य के मुख्य मंत्री बने। तथापि, 17 अक्तूबर, 1947 को पुलिस लाठीचार्ज के कारण उन्होंने मुख्य मंत्री पद से त्याग पत्र दे दिया। इस बीच श्री मेनन को भारत की संविधान सभा के लिए चुन लिया गया और उन्होंने इसकी कई समितियों में विशिष्ट सेवा की। उन्हें 1948 में कोचीन विधान सभा के लिए एक बार फिर से चुना गया और श्री इकन्द वारियर के नेतृत्व में बने मंत्रिमंडल के सदस्य बने। उन्होंने कोचीन और त्रावणकोर राज्यों के विलय संबंधी बुच समिति के सदस्य के रूप में भी सेवा की।

वर्ष 1949 में त्रावणकोर-कोचीन राज्य बनने के साथ ही वे श्री टी० के० नारायणा पिल्लै के नेतृत्व में बने मंत्रिमंडल में सदस्य बने। वर्ष 1952 में वयस्क मताधिकार के आधार पर हुए पहले आम चुनावों के बाद वे श्री ए० जे० जॉन के मंत्रिमंडल में वित्त मंत्री बने। वर्ष 1954 के आम चुनावों के बाद वे विधान सभा में कांग्रेस दल के नेता बने और 1955 में वे त्रावणकोर-कोचीन राज्य के मुख्य मंत्री बने। किन्तु 1956 में उनके मंत्रालय ने त्यागपत्र दे दिया। राज्य के पुनर्गठन के बाद वर्ष 1957 में केरल विधान सभा के पहले आम चुनावों में वे चुनाव हार गए। श्री मेनन 1962 में केरल में मुकुन्दपुरम निर्वाचन क्षेत्र से लोक सभा के सदस्य निर्वाचित हुए। 24 जनवरी, 1966 को उन्हें श्रीमती इंदिरा गांधी के नेतृत्व में केन्द्रीय मंत्रिमंडल में खाद्य, कृषि, सामुदायिक विकास और सहकारिता का प्रभारी राज्य मंत्री नियुक्त किया गया। 1967 में लोक सभा के आम चुनावों में श्री मेनन को केरल से एकमात्र कांग्रेसी उम्मीदवार के रूप में विजयी होने का श्रेय मिला। उन्हें 13 मार्च, 1967 को विधि मंत्री नियुक्त किया गया और 22 अगस्त, 1967 को उन्हें विधि तथा सामाजिक कल्याण मंत्रालय का प्रभार सौंपा गया। उन्होंने 4 नवम्बर, 1969 से 18 फरवरी, 1970 तक रेल मंत्रालय का पदभार भी सम्भाला। उन्होंने इन सभी पदों पर कर्मठता, ईमानदारी और निष्ठा से कार्य किया।

वर्ष 1962 में लोक सभा के लिए निर्वाचित होने से पूर्व भी श्री गोविन्द मेनन ने 1946 में कोचीन राज्य का प्रतिनिधित्व करते हुए संविधान सभा के सदस्य के रूप में सेवा करके राष्ट्रीय राजनीति को अपना मूल्यवान सहयोग दिया था। वह अन्तरिम संसद के सदस्य भी थे। बाद में उन्होंने तीसरे वित्त आयोग के सदस्य के रूप में सेवा की। श्री मेनन केरल में ग्रंथालय अभियान के सदस्य भी थे। वे एक उत्सुक पाठक तथा महान वक्ता थे।

श्री मेनन श्रमिकों और शोषितों के पक्षधर के रूप में सदैव स्मरण किये जाते रहे। एक मजदूर नेता के रूप में उन्होंने तब अपने गृह राज्य में कई श्रम कानून बनाए जब वह

राज्य के श्रम मंत्री थे। शिक्षा मंत्री के रूप में उन्होंने राज्य में भाषा शिक्षकों का दर्जा बढ़ाने का प्रयास किया।

श्री मेनन 1953 में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधिमंडल के उपनेता थे। बेलग्रेड में 1963 में आयोजित अंतर-संसदीय सम्मेलन में भी उन्होंने भारतीय प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व किया। 1964 में वह सरकारी उपक्रमों संबंधी संसदीय समिति के सभापति मनोनीत किये गये। श्री मेनन ने खाद्य और कृषि संगठन की 1966 में सिओल में हुई बैठक और समाज कल्याण मंत्रियों के 1968 में न्यूयार्क में आयोजित विश्व सम्मेलन में भारतीय दल का नेतृत्व किया।*

संवैधानिक और संसदीय मामलों के विशेषज्ञ

श्री मेनन मूलतः एक वकील थे। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, उन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर संविधान सभा, अन्तरिम संसद तथा तीसरी और चौथी लोक सभा के सदस्य के रूप में देश की सेवा की। संसदीय प्रक्रिया और संवैधानिक मामलों का उन्हें विशेष ज्ञान था और संविधान में जम्मू और कश्मीर संबंधित विशेष उपबंधों के प्रावधान को बनाए रखने जैसी कई जटिल समस्याओं के बारे में भी स्पष्टीकरण देने की क्षमता उनमें विद्यमान थी। जम्मू और कश्मीर राज्य में कुछ श्रम कानूनों को लागू करने के संबंध में हुई बहस में हस्तक्षेप करते हुए उन्होंने कहा था:-**

> संविधान सभा ने जब संविधान का अधिनियमन किया था तब संविधान में ऐसे केवल दो अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 1 और अनुच्छेद 370 थे, जो कि जम्मू-कश्मीर पर लागू होते थे। जहां तक अन्य रियासतों का संबंध था, पूरा संविधान उन पर लागू होता था। अनुच्छेद 370 के अधिनियम के पीछे संविधान सभा का उद्देश्य इस बात पर जोर देना था कि अधिमिलन पत्र के द्वारा ही जम्मू कश्मीर भारत का हिस्सा बना है।
>
> *** *** ***

अन्य सभी राज्यों के मामले में अधिमिलन पत्र 25 नवम्बर, 1949 को निरस्त हो गयां क्योंकि उन राज्यों ने सम्पूर्ण संविधान को स्वीकार कर लिया....परन्तु

---

*केरल विधान सभा सचिवालय से प्राप्त जानकारी पर आधारित।

**लोक सभा वाद-विवाद 2 अगस्त, 1969 कॉ॰ 433-439।

जम्मू-कश्मीर ही ऐसा राज्य था, जिसके लिये प्रतिज्ञा-पत्र में यह व्यवस्था थी कि संविधान के केवल वही उपबंध इस राज्य में लागू होंगे जो कश्मीर से संबंधित होंगे।

*** *** ***

श्री मेनन ने इस बात पर जोर दिया कि कश्मीर और मैसूर के शासकों की घोषणाओं के मूल पाठ को पढ़ने से ही दोनों स्थितियों का अन्तर स्पष्ट हो जायेगा, उन्होंने आगे कहा कि:-

> 25 नवम्बर, 1949 को कश्मीर को सम्प्रभु सत्ता अर्थात् राज्य के शासक ने संविधान को केवल उसी सीमा तक स्वीकार किया जहां तक यह जम्मू-कश्मीर पर लागू होता था..... संविधान के अधिनियमन और इन प्रपत्रों को तैयार करते समय कतिपय ऐसे कारण मौजूद थे, जिनकी वजह से भारत और भारत की संविधान सभा तथा भारत सरकार को जम्मू-कश्मीर के शासक और भारत के बीच अधिमिलन-पत्र के मामले पर जोर देना पड़ा था। इसलिये अनुच्छेद 370 इस रूप में तैयार किया गया। सरकार का प्रयास यह सुनिश्चित करना है कि जम्मू-कश्मीर का यह विशेष दर्जा शनैः शनैः क्षीण हो जाये। स्थिति बदलने के साथ-साथ कुछ वर्षों बाद सहिष्णुता की नीति द्वारा धीरे-धीरे यह विशेष दर्जा पूर्णतः समाप्त हो जायेगा और जम्मू-कश्मीर भारत के अन्य राज्यों जैसा राज्य बन जायेगा।

इसी प्रकार श्री मेनन ने संविधान संशोधन विधेयकों के मामले में संसदीय व्यवस्था में सभी चरणों पर विशेष बहुमत की आवश्यकता को लेकर एक अत्यंत युक्तिसंगत स्पष्टीकरण दिया। लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमों के नियम 377 के अंतर्गत श्री मधु लिमये द्वारा उठाये गये (व्यवस्था के प्रश्न से भिन्न) मामले के उत्तर में इस संबंध में प्रतिकूल टिप्पणी करते हुए श्री मेनन ने कहा था:*

> श्री मधु लिमये का तर्क यह है कि हमारे नियमों के अध्याय-ग्यारह में शामिल नियम 155 आदि असंवैधानिक हैं, क्योंकि वे संविधान के अनुच्छेद 100 के उपबंधों के विरुद्ध हैं और ये नियम अनुच्छेद 118 के अंतर्गत बनाये गये हैं। मेरा यह कहना है कि अनुच्छेद 100 में सामान्य मामलों का प्रावधान है । यह न

---

*लोक सभा वाद-विवाद 8 मई 1970, कॉ॰ 218-223

केवल विधेयकों से संबंधित है बल्कि संकल्पों, प्रस्तावों आदि सभी से संबंधित है। संविधान के संशोधन की प्रक्रिया का उल्लेख अनुच्छेद 368 में किया गया है और जब हम अनुच्छेद 368 के अंतर्गत किसी विधेयक पर विचार कर रहे होते हैं, तो संसद संघटक शक्ति के अनुरूप विद्यमान करती है और अन्य अवसरों पर यह अपनी सामान्य विधायिनी शक्ति के भीतर विधायन करती है। जहां तक संशोधन का संबंध है अनुच्छेद 368 एक संहिता का कार्य करता है। इसके अनुसार विधेयक विशेष बहुमत से केवल तब पारित किया जायेगा, जब विशेष बहुमत हो और कतिपय मामलों में भारत के आधे से अधिक राज्यों से सहमति प्राप्त करने के पश्चात ही पारित किया जायेगा।

*** *** ***

जब संसद अनुच्छेद 368 के अंतर्गत अपनी सांविधानिक शक्ति का उपयोग कर रही हो तो इस संबंध में पूर्ण उदेश्य निहित होना अपेक्षित है। अतः जब नियम 155 और अन्य नियम जैसे नियम बनाये गये थे तो अनुच्छेद 100 का उल्लंघन नहीं किया गया और न ही संविधान के अन्य किसी अनुच्छेद का उल्लंघन किया गया। ये नियम, जो कि पिछले कई वर्षों से लागू हैं पूर्णतः वैध हैं और मैं नहीं समझता कि इनके बारे में कोई संदेह है।

राजनीति में नैतिकता के पक्षधर

राजनीति में गहरी पैठ रखने के बावजूद श्री मेनन यह चाहते थे कि राजनीति का खेल कुछ नियमों से आबद्ध होना चाहिए। उन्होंने साठ के दशक के अंतिम वर्षों में सर्वाधिक प्रचलित दल बदलने की प्रथा का समर्थन नहीं किया। दल-बदल संबंधी विधेयक स्वीकार करने से बहुत पहले ही श्री मेनन ने संसद के और राज्य विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों की एक से दूसरे दल में जाने की प्रवृति पर रोक लगाने की आवश्यकता महसूस की थी। उन्होंने यह पाया कि दल-बदल का मूल कारण मंत्री पद है, अतः मंत्रालयों का आकार सीमित किया जाना चाहिए। लोक सभा में, वाद-विवाद में भाग लेते हुए उन्होंने कहा* :—

दल परिवर्तन के आभास के कारण व्यापक मंत्रिमंडलों का उदय होता है, कभी-कभी ऐसा दल परिवर्तन से बचने के लिए किया जाता है और कभी-कभी

*लोक सभा वाद-विवाद, 26 जुलाई, 1968, कॉ॰ 2061-62

> दल परिवर्तन हो जाने के कारण होता है। यदि दल परिवर्तन की बात करें तो हम देखते हैं कि जब दल परिवर्तन के फलस्वरूप कोई सरकार गिरती है, तो जिन्होंने दल बदला है वे बदले में कुछ आशा करते हैं और यदि उनकी आशा पूरी नहीं होती है, तो वे पुनः दल बदल लेंगे। अतः, हम देखते हैं कि कई स्थानों पर सीमा से अधिक बड़े मंत्रिमंडल अस्तित्व में आए हैं .... चाहे किसी राज्य में अथवा केन्द्र में यदि हम अत्यधिक विशाल और बड़े मंत्रिमंडल का गठन करते हैं तो लोग इस बात को पसन्द नहीं करेंगे और यह लोकतंत्र का उपहास होगा। .... हम चाहे कोई भी कानून बनाएं और संविधान में चाहे कोई भी संशोधन करें, यदि हम एक ऐसी सामान्य आचार संहिता बना सकें जिसका विभिन्न राजनैतिक दलों द्वारा पालन किया जाए तो यह अधिक बेहतर होगा। लेकिन मैं यह भी कहता हूं कि हमें अपने देश में मंत्रिमंडलों के आकार की सांविधिक सीमा निश्चित करने में कोई संकोच नही करना चाहिए क्योंकि मैं देखता हूं ऐसा अन्य देशों में भी किया गया है।

श्री मेनन के मार्गदर्शन में बने महत्वपूर्ण कानूनों में से एक का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था और वह था बैंककारी कम्पनी राष्ट्रीयकरण विधेयक। जुलाई, 1969 में 14 वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण से भारतीय अर्थव्यवस्था के इतिहास में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। राष्ट्रीयकरण के संबंध में की गई लम्बी कानूनी बहस तथा इस विषय पर संसद में हुए तीखे वाद-विवाद ने श्री मेनन को सचमुच में थका दिया था जिन्हें विधि मंत्री के नाते इस भार के आवेग को सहना पड़ा। अपने खराब स्वास्थ्य के बावजूद उन्होंने कठिन परिश्रम किया और अन्तिम क्षण तक करते रहे। श्री मेनन का अपने पद पर कार्य करते हुए और अपने कर्तव्य पालन की ऐसी विशिष्ट भावना को लेकर, जिसका संभवतः अनेक लोग अनुकरण करना चाहेंगे, 23 मई, 1970 को नई दिल्ली में निधन हो गया।

यद्यपि श्री मेनन आज हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन एक कृतज्ञ राष्ट्र अपनी संसद तथा शासन तंत्र के प्रति उनके स्थायी योगदान के लिए उन्हें हमेशा याद करेगा।

भाग-दो

उनके विचार

(श्री मेनन द्वारा लोक सभा/राज्य सभा में दिए गए कुछ चुनींदा भाषणों से उद्धरण)

2

संवैधानिक, संसदीय तथा विधायी मामले

एक

नई संविधान सभा का गठन*

जब कोई सुचारू रूप से कार्य कर रही सरकार गिर जाती है और जब किसी नई सरकार का गठन किया जाना होता है, तब संविधान सभा की बैठक बुलाई जाती है। 'संविधान सभा' शब्दों का यही अर्थ है। जब एक सुव्यस्थित सरकार हो और एक सुव्यस्थित संविधान हो, तो यह कहना निरर्थक है कि एक संविधान सभा गठित की जानी चाहिए। यह बिल्कुल इस प्रकार है कि किसी को क्रांति आयोजित करनी चाहिए। यदि यहां क्रांति सफल रहती है तो देश में संसद के ये दोनों सदन और यह सरकार, इन सभी को गतिहीन किया जा सकता है और इन्हें कार्य नहीं करने दिया जाएगा। और जब कोई सफल क्रांति होती है, तो क्रांति का नेतृत्व करने वाले लोग जो कार्य करते हैं उनमें से एक कार्य संविधान सभा की बैठक बुलाना है ताकि यह निर्णय किया जा सके कि उक्त अवधि के बाद देश पर किस प्रकार शासन किया जाना चाहिए। इस प्रकार की संविधान सभाएं तभी अस्तित्व में आई हैं जब क्रांतियां हुई हैं। दरअसल, दिन और रात अथवा रात और दिन के बीच के धुंधले प्रकाश में एक ऐसी स्थित आती है जिसमें लोग एक दूसरे से मिलते हैं और एक ऐसा संविधान तैयार करते हैं जो देश को मान्य होता है। दूसरे शब्दों में, एक संविधान सभा किसी क्रांति का एक भाग होती है। विश्व में सर्वत्र ऐसा ही हुआ है और संविधान सभा के अस्तित्व में आने के लिए यह अतिरिक्त कानूनी और अतिरिक्त संवैधानिक उपाय है, असंवैधानिक नहीं।

महोदय, आपको पता है कि किस प्रकार अठारहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में फ्रांस की क्रांति से कुछ ही सप्ताह अथवा कुछ ही दिनों पहले, फ्रांस की नेशनल असेम्बली के सदस्य एक संविधान तैयार करने के लिए बैठक करना चाहते थे, लेकिन फ्रांस के राजा

---

* नई संविधान सभा के गठन के बारे में श्री एन०आर० मुनिस्वामी द्वारा 1 मई, 1970 को राज्य सभा में प्रस्तुत संकल्प (भाषण के अन्त में उद्धत मूल-पाठ) पर चर्चा के बीच में बोलते हुए; राज्य सभा वाद-विवाद 1 मई, 1970 का० 146, राज्य सभा वाद-विवाद, 15 मई, 1970 का० 151-164।

ने बल्कि महारानी ने भी यह बैठक नहीं होने दी और सभा कक्ष के द्वारों पर ताले लगा दिए गए तथा ये लोग उसमें प्रवेश नहीं कर सके। तब उक्त सदस्य एक टैनिस के मैदान में एकत्र हुए और शपथ ली कि फ्रांस के लिए एक संविधान को बनाने अथवा संविधान तैयार करने से पहले वे लोग वहां से नहीं हिलेंगे। इस शपथ को "टैनिस कोर्ट ओथ" के रूप में जाना जाता है। अमरीकी संविधान के मामले को लीजिए ब्रिटिश सरकार के अधीन 13 उपनिवेश थे। उन्होंने विद्रोह कर दिया, उन्होंने सेना का गठन किया, जिसने ब्रिटिश सेना से युद्ध किया। वे स्वतंत्र हो गए और तब संविधान के संबंध में एक सम्मेलन बुलाया गया।

मैंने कुछ मित्रों को कहते सुना है कि हमारे देश की संविधान सभा, जिसने यह संविधान दिया है, ब्रिटिश सरकार द्वारा स्थापित अथवा गठित निकाय था। आंशिक रूप से यह कथन सच है। किन्तु, भारतीय संविधान सभा की यह महानता थी कि एक बार अस्तित्व में आने के बाद उसने वे सभी बंधन और सीमाएं तोड़ दी थीं जिनमें कैबिनेट मिशन ने इसे बांध दिया था।

दिसम्बर, 1946 में जब भारतीय संविधान सभा आरंभ की जानी थी, तो कुछ इस प्रकार की बातें उठी थीं, कि शायद तत्कालीन वायसराय अथवा गवर्नर जनरल लॉर्ड वेवल संविधान सभा की बैठक न होने दें क्योंकि जिस दिन 9 दिसम्बर, 1946 को इसकी बैठक बुलाई गई थी, मुस्लिम लीग ने यह कह दिया था कि यह संविधान सभा में प्रवेश ही नहीं करेंगी। मुस्लिम लीग के नेताओं को छोड़कर अन्य भारतीय नेताओं ने कहा कि चाहे मुस्लिम लीग भाग ले अथवा न ले, वे एक संविधान सभा के रूप में कार्य करेंगे। पंडित जवाहर लाल नेहरू इसके बारे में इतने स्पष्ट थे कि उन दिनों दिल्ली में टैनिस कोर्ट ओथ आदि बातों के बारे में चर्चा आम हो गई थी।

महोदय, अब मैं संविधान सभा के कार्यकरण के उस स्वरूप के बारे में थोड़ा बताना चाहता हूं जो ब्रिटिश कैबिनेट मिशन ने निर्धारित किया था। उन्होंने कहा कि ब्रिटिश भारत से राज्य विधान सभाओं अथवा प्रांतीय विधान सभाओं को अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करना चाहिए और भारतीय रियासतों के महाराजाओं द्वारा 93 सदस्य नामित किए जाने चाहियें..... यह कहा गया कि भारतीय रियासतों के प्रतिनिधियों को संविधान सभा में उस समय होना चाहिए, जब संविधान को अन्तिम रूप दिया जा रहा हो अर्थात् जब

संघीय व्यवस्था के बारे में उपबंध बनाये जा रहे हों। संविधान सभा की बैठक 9 दिसम्बर को हुई। सदस्यों ने शपथ-ग्रहण की और संविधान सभा ने पहला कार्य यह किया कि उसने "संविधान सभा के उद्देश्य सम्बन्धी संकल्प" पर चर्चा की और इसे पारित किया। मैं समझता हूं कि इसे 13 दिसम्बर को पेश किया गया था। अनेक सदस्यों ने उद्देश्यों के बारे में अपने विचार व्यक्त किए। यदि आप संविधान सभा के उद्देश्य सम्बन्धी संकल्प तथा उस पर चर्चा के समय दिये गये भाषणों का अध्ययन करें तो आप पायेंगे कि संविधान सभा के सदस्यों ने इसमें दिये गये विचारों की या तो उपेक्षा की या उन्होंने उन्हें अस्वीकार कर दिया। भारतीय रियासतों के प्रतिनिधि आये और यह सब कुछ हुआ।

किसी ने यह प्रश्न पूछा है कि क्या मेरा सिद्धांत यह है कि संविधान सभा केवल क्रांति के समय ही बन सकती है, तो भारत में यह संविधान सभा किस प्रकार बन गई ? महोदय, अतीत पर दृष्टिपात करने एवं भारत में स्थितियों का अध्ययन करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि 1942 से 1950 तक जब संविधान बनाया जा रहा था, उस समय भारत क्रांति काल से ही गुजर रहा था। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् जब श्री ऐटली प्रधान मंत्री बने, उन्होंने ब्रिटिश संसद में एक भाषण दिया था जो मुझे अभी तक याद है। उन्होंने टोरी लोगों को उत्तर देते हुए कहा था कि "ब्रिटिश लोगों के लिए भारत पर शासन करना असंभव हो गया है।"

मुझे वह गद्यांश अब भी याद है क्योंकि उन्होंने इस प्रश्न का उत्तर दिया था "साम्राज्य को समाप्त क्यों किया जा रहा है?" और ऐटली का उत्तर था कि "ब्रिटिश लोगों के लिए भारत पर शासन करना असंभव हो गया है।" इसी क्रांतिपूर्ण स्थिति के कारण संविधान सभा बनाई गई और उसने हमारा संविधान बनाया। मैं स्वीकार करता हूं कि संविधान में त्रुटियां हैं और उसमें संशोधन करने की आवश्यकता भी है। साथ ही मैं मानता हूं कि इसमें संशोधन किया जा सकता है क्योंकि हमारे संविधान में संसद को संविधान में संशोधन करने की शक्तियां प्रदान की गई हैं। अनुच्छेद 368 में भारतीय संसद को संविधान में संशोधन करने की शक्ति दी गई है और अनुच्छेद 245, 246, 247 और 248 आदि द्वारा विधायी शक्तियां दी गई हैं। फरवरी, 1967 में गोलकनाथ निर्णय आने तक हमारी संसद को संविधान में संशोधन करने की शक्ति प्राप्त थी। संसद ने भी इस बात की पुष्टि की कि इसे मौलिक अधिकारों से संबंधित अध्याय सहित संविधान के किसी भी भाग में संशोधन करने की शक्ति प्राप्त है। किन्तु, गोलकनाथ के मामले में 6:5 के बहुमत से निर्णय दिया गया कि संविधान के भाग-तीन, जिसमें मौलिक अधिकार निहित हैं, ये संशोधन नहीं किया जा सकता। मैं

अपने मित्र से सहमत हूं कि इस मामले में इसे अन्तिम स्थिति नहीं माना जा सकता, क्योंकि उच्चतम न्यायालय ने ही इससे पूर्व दो बार कहा है कि "मौलिक अधिकार" के अध्याय में भी संशोधन किया जा सकता है।

महोदय, चूंकि हमारे पास एक ऐसा संविधान है जिसने संसद् को संविधान में संशोधन करने की शक्ति प्रदान की है, इसलिए नयी संविधान सभा का गठन करने (कन्वीन करने) की कोई आवश्यकता नहीं है— मैंने यहां संकल्प में प्रयुक्त किये गये शब्द (कन्वीन) का प्रयोग किया है। मैं पूछना चाहता हूं कि संविधान सभा गठित करने का अधिकार किसे हो? जब हम कोई एसोसिएशन या समिति नियुक्त करते हैं तो हम किसी व्यक्ति को उसका आयोजक नियुक्त करते हैं जो पत्र प्रेषित करके सभी सम्बद्ध लोगों को बुलाता है। आज जबकि संविधान सम्मत सरकार है, संसद् है, पूरे भारत में संविधान के अनुसार विधानमंडल बने हैं तो संविधान सभा कौन बुलायेगा? यदि प्रधान मंत्री देश के सभी भागों से 400-500 लोगों की सभा बुलाता है, तो क्या यह संविधान सभा होगी? यदि हम एक संकल्प पारित करके कोई सभा बुलाते हैं, तो क्या वह संविधान सभा बन जायेगी? क्या हम गोलकनाथ मुकदमे में मुख्य न्यायाधीश, श्री सुब्बा राव द्वारा दिये गये इस अपूर्ण एवं अस्पष्ट सुझाव का अनुसरण करें कि संसद को अवशिष्ट शक्तियों के अन्तर्गत निर्णय करना चाहिए तथा एक संविधान सभा का गठन करना चाहिए और केवल इसे ही मौलिक अधिकारों में संशोधन करने का अधिकार हो सकता है। विधि-वेत्ताओं की यह आम राय है कि मुख्य न्यायाधीश द्वारा दिया गया यह निर्देश अथवा सुझाव न तो ठीक है, न व्यवहार्य और न ही तर्क संगत। इस आम राय का कारण यह है कि यदि भारत की संसद संविधान सभा का गठन करने के लिए आज कोई कानून पारित करती है, तो क्या उस संविधान सभा को इस संसद से अधिक शक्तियां प्राप्त होंगी। क्योंकि वह तो संसद द्वारा गठित "निकाय" कहा जायेगा..... और यदि संसद को "मौलिक अधिकार" संबंधी अध्याय में संशोधन करने का अधिकार नहीं है, तो क्या संसद द्वारा गठित किया गया कोई निकाय ऐसा कानून पारित कर सकता है जिसके अन्तर्गत मौलिक अधिकारों में संशोधन किया जा सके? इस मामले के संबंध में बड़ी भ्रांति है और इसलिए मैंने इसे स्पष्ट करने के लिए थोड़ा समय लिया।

संविधान सभा गठित करने का विचार उचित नहीं है और मेरा इस प्रस्ताव को पेश करने वाले अपने मित्र से यह अनुरोध है कि वे इस मामले पर पुनर्विचार करें तथा संकल्प को वापस ले लें।

आज परिवर्तन क्यों किया जाना चाहिए इनमें इसके लिए कुछ कारण दिये गये हैं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह है कि विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका के विशेष

संदर्भ में केन्द्र-राज्य संबंधों को नया रूप दिया जाना चाहिए। मैं इस बारे में भी कुछ कहना चाहता हूं। यह एक ऐसी बात है जिसके बारे में हम अनेक वर्षों से सुनते आ रहे हैं। मैं स्वयं अपने राज्य में वित्त मंत्री तथा बाद में मुख्य मंत्री रहा हूं। भारत में प्रत्येक राज्य सरकार ने यह शिकायत की है कि केन्द्रीय सरकार को उपलब्ध संसाधनों की तुलना में राज्यों को बहुत कम संसाधन उपलब्ध हैं। जब केन्द्र-राज्य संबंधों में सुधार लाने अथवा उन्हें सुदृढ़ बनाने आदि की मांग की जाती है, तो यह मांग अधिकांशतः केन्द्रीय सरकार से और अधिक अनुदान प्राप्त करने के लिए होती है। ऐसी मांग राज्य सरकारों को उपलब्ध संसाधनों से सम्बद्ध होती है। इस मामले के बारे में मैं सार्वजनिक रूप से भी बोलता रहा हूं। यद्यपि, केन्द्र-राज्य संबंधों में सुधार करने की मांग की गई है, किन्तु किसी ने भी मुझे अभी तक यह नहीं बताया है कि केन्द्र-राज्य संबंधों में किस प्रकार से, किस तरीके से परिवर्तन किया जाये। न केवल भारत में, बल्कि विश्व के अन्य सभी संघीय शासन-व्यवस्था वाले देशों, यहां तक कि संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया में भी राज्य सरकारों द्वारा ऐसी शिकायतें की जाती रही हैं कि केन्द्रीय सरकार/संघीय सरकार अधिक से अधिक शक्तियां समेटती जा रही हैं और राज्य सरकारों को कमजोर किया जा रहा है। एकमात्र सोवियत संघ ही, यदि इसे संघ माने तो ऐसा संघ है जहां इस प्रकार की शिकायत नहीं की जाती है। किन्तु मैं आपका ध्यान सोवियत संविधान के एक अनुच्छेद की ओर आकर्षित करना चाहूंगा जिसमें कहा गया है कि संघीय सरकार और सभी राज्य सरकारों अथवा प्रांतीय सरकारों का बजट एक ही दस्तावेज होता है। सम्पूर्ण सोवियत संघ पर शासन करने वाले मास्को स्थित प्राधिकारी ही संघ तथा संघटक राज्यों दोनों के लिए बजट तैयार करते हैं। इसीलिए वहां कोई परेशानी नहीं होती। किन्तु, ऐसा सोवियत राजनैतिक व्यवस्था के एकात्मक स्वरूप के कारण ही संभव हुआ है। यदि हम भारत में भी उसी प्रकार की व्यवस्था अपना लें, तो ये परेशानियां समाप्त हो जाएंगी। किन्तु यह संभव नहीं है।

जो लोग केन्द्र-राज्य संबंधों के बारे में बोलते रहते हैं, मैं चाहता हूं वे लोग बतायें कि सातवीं अनुसूची की सूची संख्या-एक में किस प्रविष्टि विशेष को सातवीं अनुसूची की सूची संख्या-दो में अन्तरित कर दिया जाये। एक भी व्यक्ति ने अभी तक यह नहीं बताया है। अब भी मैं इस सदन में प्रत्येक मित्र से पूछ रहा हूं कि वे बतायें कि संविधान की प्रथम अनुसूची की किस प्रविष्टि विशेष को वे सूची संख्या-दो में अन्तरित करना चाहते हैं। महोदय, क्या आप और सभा के अन्य सदस्य इस बात से सहमत होंगे कि "रक्षा" को राज्य का विषय बना दिया जाये? क्या वे सहमत होंगे कि "विदेश" को राज्य का विषय बना दिया जाये?

वे कह सकते हैं कि वे ऐसा तो नहीं चाहते, लेकिन "आयकर" को राज्य का विषय बनाया जा सकता है। हालांकि किसी ने भी अभी तक ऐसा कहा नहीं है। यदि आयकर राज्य का विषय बन जाता है, जैसा कि यह स्विट्जरलैंड में है, जो एक विकसित देश है, तो आप अनुमान लगाइये कि इसका परिणाम क्या होगा? महोदय, मैं 1961 में गठित किए गये तीसरे वित्त आयोग का सदस्य था और तब स्थिति यह थी कि भारत में वसूल किये जाने वाले आयकर का लगभग 80 प्रतिशत भाग बम्बई और कलकत्ता नगरों से प्राप्त होता था और संविधान के अनुच्छेद 280 के अन्तर्गत गठित वित्त आयोग ने स्पष्ट रूप से कहा है कि समूचे भारत से वसूल किए गए इस आयकर का एक भाग—जो अब 75 या 80 प्रतिशत है। विभिन्न राज्यों को जनसंख्या के आधार पर बांट देना चाहिए। इस वितरण से राज्यों के प्रति समाजवादी दृष्टिकोण की पूर्ति होगी। लेकिन पश्चिम बंगाल और महाराष्ट्र की सरकारों ने वित्त आयोग के समक्ष हमेशा इस बात का विरोध किया है। उनका कहना है कि राज्यों को इसका वितरण वसूली के अनुसार होना चाहिए और अब यदि आयकर राज्य विषय बन गया, तो राजस्व का एक बड़ा हिस्सा पश्चिम बंगाल और महाराष्ट्र की सरकारों को चला जाएगा। मेरे अपने राज्य केरल को कुछ नहीं मिल पाएगा। संभवतः यही स्थिति आपके राज्य की भी होगी। अब जैसा होता है और जो देश के सबसे अधिक हित में है, वह यह है कि वसूल किया गया आयकर एक की जगह एकत्र किया जाए और उसके बाद जनसंख्या के आधार पर उसे राज्यों में वितरित किया जाए। इस व्यवस्था से भारत में दो या तीन राज्यों को छोड़कर बाकी सभी राज्य लाभान्वित होते हैं। जब 1935 का अधिनियम लागू था उस समय 1936 में तैयार किए गए फार्मूले के अनुरूप, हमारी संविधान सभा को इस व्यवस्था का सुझाव दिया गया था। जब विभिन्न रियासतों के बीच यह विवाद उत्पन्न हुआ कि केन्द्र को उन्हें आयकर वसूली में से कितना-कितना अनुदान देना चाहिए, तो नीमेयर नामक एक अर्थशास्त्री ने अपना पंचाट दिया और इसी आधार पर वित्त आयोग ने काम किया है।

महोदय, यह कहा जाता है कि सरकार के राजस्व के संसाधन निश्चित नहीं हैं, उनमें कमी-वृद्धि होती रहती है। केन्द्रीय सरकार के राजस्व का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत उत्पाद शुल्क है। भारत सरकार द्वारा उत्पाद शुल्क उन फैक्टरियों से वसूल किया जाता है, जिनमें माल का उत्पादन होता है। इस माल के फैक्टरी से बाहर निकालने से पहले केन्द्रीय सरकार इस पर उत्पाद शुल्क वसूल करती है। तुलनात्मक रूप में इस मद से भारी राशि वसूल होती है। क्या किसी राज्य का प्रतिनिधि उत्पाद शुल्क को केन्द्र से राज्यों में अन्तरित करना चाहेगा? तब भी परिणाम यही होगा। इसलिए यदि कोई ऐसे विषय हों, जिनके मामले में कुछ नेता आपस में बैठकर, विचार कर यह बताएं कि इन विषयों को

सूची-I से सूची-II में अन्तरित कर दिया जाए तो ऐसा करने में कठिनाई क्या है? संविधान के अनुच्छेद 368 के अधीन एक संशोधन करके ऐसा किया जा सकता है।

तब केन्द्र राज्य संबंध की क्या स्थिति है? सूची-I से सूची-II में और कितनी अधिक शक्ति अन्तरित की जानी चाहिए? अब मैं कुछ भी सुनने की इच्छा नहीं रखता हूं। यदि इन तीन सूचियों में कोई परिवर्तन करना है, तो इसके लिए संविधान सभा की आवश्यकता नहीं है। मैं संविधान संशोधन का प्रारूप तैयार कर दूंगा जिसे एक घंटे में पारित किया जा सकता है। यह एक सरल मामला है।

उसके बाद महोदय पार्टियों की बहुलता और सम्बद्ध मामलों का सवाल उठाया गया। मैं नहीं जानता कि प्रस्ताव प्रस्तुत करने वाले ने इस बात पर गौर किया या नहीं कि भारतीय संविधान में या इसके लिए किसी भी अन्य संविधान में जहां हमारी तरह की संसदीय सरकार है, पार्टी शब्द का कोई अर्थ नहीं है। मैंने विशेष रूप से इस मामले पर कल ध्यान दिया। भारतीय संविधान में ऐसा कोई अनुच्छेद नहीं है, जिसमें "पार्टी" शब्द का प्रयोग किया गया है "विपक्ष" शब्द का प्रयोग किया गया है, क्योंकि मैं समझता हूं कि कल इस सभा में "विपक्ष" सुविधाओं संबंधी कुछ मांगें उठी थीं। संविधान में पार्टी के बारे में, विपक्ष के बारे में, पार्टी के अधिकारों के बारे में, विपक्ष के अधिकारों के बारे में, सरकार के प्रति अविश्वास प्रस्ताव आदि के बारे में कोई हवाला नहीं दिया गया है। ये सब बातें संविधान के अनुच्छेद 75(3) से उठती हैं।

"मंत्रीपरिषद् का लोक सभा के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व होगा।"

यही दृष्टिकोण, छोटा सा दृष्टिकोण अनुच्छेद 75(3) में निहित है, जिससे सभी राजनीतिक पार्टियां सामने आई हैं। विपक्षी पार्टियां सामने आई हैं। अविश्वास प्रस्ताव पेश किए जा रहे हैं, आदि-आदि। वस्तुतः राजनीतिक कार्यकरण का ढांचा इसी व्यवस्था का परिणाम है कि मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होगी और यदि कोई नया संविधान बनाया जाता है तो हम उसमें पार्टियों का कोई उल्लेख नहीं कर सकते और यदि मान लें कि संविधान का प्रारूप बनाने के बाद नई पार्टियां सामने आती हैं तो उन्हें समायोजित करने के लिए हमें एक नए संविधान का प्रारूप बनाना पड़ेगा।

राष्ट्रपति और राज्यपाल की शक्तियों के साथ-साथ प्रधानमंत्री तथा मुख्यमंत्री की शक्तियों का उल्लेख भी किया गया है। जहां तक मेरी जानकारी है, पिछले बीस वर्षों में राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री की शक्तियों को लेकर कोई विवाद पैदा नहीं हुआ है, कोई समस्या खड़ी नहीं हुई है। पिछले बीस वर्षों में ये परंपराएं बन गई हैं कि ये बातें एक निश्चित तरीके से चलती रहनी चाहिएं। वर्ष 1967 के चुनावों के बाद, राज्यों में राज्यपालों द्वारा मंत्रियों को बरखास्त करने या मंत्रालयों का गठन करने आदि के बारे में कुछ विवाद

उठ खड़े हुये हैं। महोदय, रियासतों के लिए इस प्रकार की उत्तरदायी सरकार भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अधीन वर्ष 1937 में शुरू हुई थी। उसके बाद वर्ष 1937, 1946, 1952, 1957, 1962 और लघु आम चुनाव में 1969 में सभी राज्यों में राज्यपाल द्वारा ही संभवतः 1001 अवसरों पर मंत्रालयों का गठन किया गया। इससे कोई कठिनाई उत्पन्न नहीं हुई। वर्ष 1967 का राजस्थान का उदाहरण लीजिए, जहां राज्यपाल श्री सम्पूर्णानंद ने एकमात्र बहुमत वाली पार्टी, कांग्रेस पार्टी के नेता को सरकार का गठन करने के लिए आमंत्रित किया। तब यह कहा गया कि संयुक्त विपक्ष में उस पार्टी से कुछ अधिक सदस्य हैं, जिसके नेता को सरकार का गठन करने के लिए आमंत्रित किया गया है। इस अवसर पर संयुक्त विपक्ष द्वारा एक अद्भुत तरीका अपनाए जाने के कारण वहां राष्ट्रपति शासन लागू किया गया। यदि सरकार का गठन करने हेतु कांग्रेस के नेता को आमंत्रित कर राज्यपाल ने गलत किया तो संविधान का यह विशेष अनुच्छेद जिसका मैंने उल्लेख किया कि—मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी होगी—उसके लिए लड़ने का मार्ग प्रशस्त कर देता, यहां शक्ति प्रदर्शन की कोई आवश्यकता नहीं थी। जिस दिन सभा की बैठक हुई उसमें यदि संयुक्त विपक्ष का बहुमत होता और मुख्यमंत्री के विरुद्ध एक साधारण अविश्वास प्रस्ताव पेश करता तो यह एक सही कार्यवाही होती। इसके बजाय हमने इस पक्ष में और उस पक्ष में सदस्यों की संख्या के रूप में शक्ति प्रदर्शन किया। मैं नहीं समझता कि यदि संविधान की परम्पराओं को उचित ढंग से समझा जाये और उनके अनुरूप कार्य किया जाये तो कोई कठिनाई पैदा होगी। इन सभी कारणों से महोदय, मेरा यह सुझाव है कि इस प्रस्ताव में संविधान संबंधी कोई ठोस विचार नहीं है, इसलिये मेरा माननीय मित्र से अनुरोध है कि वह इसे वापस ले लें।

नई संविधान सभा के गठन से संबंधित संकल्प का मूल पाठ

"सभा का विचार है कि गत दो दशकों से कुछ अधिक अवधि के दौरान देश में आए अभूतपूर्व सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक परिवर्तनों के वर्तमान संदर्भ में, भारत के संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में समुचित संशोधन करने के लिए आगामी आम चुनावों से पहले एक नई संविधान सभा का गठन किया जाये, ताकि देश की अखंडता, प्रभुसत्ता, एकता और तटस्थता को सुदृढ़ बनाने, इन्हें सुरक्षित रखने, तथा भारत के सभी नागरिकों को न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व प्रदान करके समाजवाद और लोकतंत्र में हो रही प्रगति के अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने के लिए भारत के संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में उपयुक्त संशोधन किए जा सकें। इस

संबंध में सभा आगे सिफ़ारिश करती है कि इस प्रकार के संशोधन करते समय संविधान सभा विशेष रूप से निम्न बातों का ध्यान रखेगी:—

1. कानून और व्यवस्था को अक्षुण्ण रखते हुए मौलिक अधिकारों का;
2. विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका के विशेष संदर्भ में केन्द्र/राज्य संबंधों को नई दिशा देने का;
3. प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री की तुलना में राष्ट्रपति और राज्यपाल की शक्तियों का;
4. भारत की राजभाषा और इसकी लिपि का; और
5. दलों की बहुलता तथा सम्बद्ध मामलों का।"

संविधान का संशोधन

यह निश्चय ही एक अत्यंत महत्वपूर्ण विधेयक है इसीलिए सदन में अधिकांश सदस्यों द्वारा इस विधेयक के समय को बढ़ाने की मांग की गई है। इस विधेयक के महत्वपूर्ण होने के कारण इसके सरकारी विधेयक न होने पर भी, सरकार की ओर से मैं प्रस्ताव करता हूं कि इसे दोनों सदनों की 45 सदस्यों वाली संयुक्त समिति को भेजा जाए।

विधेयक की विषयवस्तु में, हालांकि यह एक खंडीय विधेयक है, भारतीय संसद के संविधान को संशोधित करने के अधिकार और शक्तियां समग्र रूप से व्याप्त हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि विधेयक की विषयवस्तु में, हालांकि यह केवल एक खंड का विधेयक है, संविधान को संशोधित करने के बारे में संशोधन की शक्ति अथवा सिद्धांतों का समग्र रूप से उल्लेख किया गया है।

इसमें बताया गया है कि क्या संसद के पास शक्ति होनी चाहिए, क्या संसद के पास यह शक्ति है और क्या संसद के पास यह शक्ति नहीं है, आदि।

इस संबंध में अनुच्छेद 368 का हवाला दिया गया है, क्योंकि इस वर्ष 27 फरवरी तक न केवल संसद और न केवल भारत में अन्य विधानमंडलों बल्कि सभी उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय का यह विचार था कि अनुच्छेद 368 में संविधान को संशोधित करने की शक्ति निहित है।

यह एक संवैधानिक मामला है जिस पर अत्यंत शांत वातावरण में बहस और विचार किया जाना चाहिए क्योंकि यह मामला संविधान के अंतर्गत हमारी संसद के अधिकारों और शक्तियों से संबंधित है।

इस संबंध में एक धारणा है और इसका खूब जोर शोर से प्रचार किया जा रहा है कि यह संसद संशोधन की शक्तियों का दुरुपयोग कर रही है। वास्तव में 21 बार हमारे संविधान में संशोधन किया गया है। यह कहना आंशिक सत्य है कि संशोधन करने की शक्तियों का दुरुपयोग किया गया है क्योंकि संविधान में 21 बार संशोधन किया गया है और इन इक्कीस संशोधनों में से केवल तीन संशोधनों को छोड़कर शेष संशोधन ऐसे विषयों पर थे जिन पर कोई विवाद नहीं था। हमारे संविधान में 395 अनुच्छेद और आठ

अनुसूचियां हैं, जोकि एक वृहद संविधान है जिसमें महत्वपूर्ण और गैर-महत्वपूर्ण सभी प्रकार के मामलों के लिए प्रावधान किया गया है। हमारे लिए ऐसा करना अत्यंत आवश्यक था। इसलिए यह आवश्यक हो गया कि संविधान में समय-समय पर संशोधन किए जाएं। उदाहरण के लिए नवीनतम संशोधन, इक्कीसवें संशोधन को लें जिसे सिंधी भाषा को आठवीं अनुसूची में शामिल करने हेतु सर्वसम्मति से पारित किया गया था। इस संशोधन का संदर्भ भी दिया गया है और इस सदन द्वारा पारित संशोधनों में इसकी गणना भी की गई है। पहले, चौथे और सत्रहवें संशोधनों को छोड़कर शेष संशोधनों का विषय ऐसा था जिन्हें पारित करने के लिए सदन, राष्ट्र एवं जनता सहमत थी। ये तीनों संशोधन मूल अधिकारों में से केवल एक, अनुच्छेद 31, से संबंधित थे। पिछले 16 अथवा 17 वर्षों के दौरान तीन अवसरों पर संसद को संपत्ति के अधिकार से संबंधित कुछ मामलों के संबंध में संविधान में संशोधन करने के प्रश्न पर विचार करना पड़ा था। गोलकनाथ मामले में बहुमत से निर्णय देने वाले न्यायाधीशों में से एक विद्वान न्यायाधीश—मैं जे० हिदायतुल्ला का जिक्र कर रहा हूं, ने कहा कि सम्पत्ति के अधिकार को खंड तीन में नहीं रखा जाना चाहिए था। इस सदन में छोटे-मोटे मामलों को छोड़कर किसी भी अवसर पर अन्य मूल अधिकारों का मामला नहीं उठाया गया और जहां कहीं उठाया गया, इस पर न्यायाधीश हिदायतुल्ला ने कहा कि वे विधिसम्मत थे। विद्वान न्यायाधीश के अनुसार वे संशोधन अच्छे थे। एक या दो बार अनुच्छेद 15 में संशोधन किया गया। न्यायाधीश कहते हैं कि यह कोई आपत्तिजनक संशोधन नहीं है, कि यह अनुच्छेद 13 का समरूपी है, कि यह एक अच्छा संशोधन है। अनुच्छेद 16 में संशोधन किया गया, अनुच्छेद 19 में भी संशोधन किया गया ताकि इस अनुच्छेद के अंतर्गत दी गई स्वतंत्रता राज्य की सुरक्षा और अन्य बातों के अनुरूप हो सके। यहां पर फिर न्यायाधीश हिदायतुल्ला ने अपने पांडित्यपूर्ण निर्णय में कहा कि यह संशोधन विधि-सम्मत था।

संविधान में पहला संशोधन वर्ष 1951 में किया गया था। मैं उस विधेयक के उद्देश्यों और कारणों के विवरण का हवाला देना चाहूंगा जोकि संविधान का पहला संशोधन था। यह बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह इसी सदन में पुरःस्थापित किया गया था और इसकी अगुआई तब के प्रधानमंत्री ने स्वयं की थी। हम संविधान से खिलवाड़ नहीं कर रहे थे।

मैंने उद्देश्यों एवम् कारणों संबंधी विवरण का हवाला दिया है, क्योंकि संविधान के अधिनियमन के कुछ महीनों के पश्चात् यह देखा गया कि कतिपय उपबंधों में विशेषकर नीति निदेशक तत्वों से संबद्ध अन्य उपबंधों को देखते हुए संशोधन करने की आवश्यकता थी। इन नीति निदेशक तत्वों के संबंध में, मैं सभा का ध्यान अनुच्छेद 37 में दिये गये केवल एक ही उपबंध की ओर आकर्षित करना चाहूँगाः

"इस भाग में अन्तर्विष्ट उपबंध किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होंगे, किन्तु फिर भी इनमें अधिकथित तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं और विधि बनाने में इन तत्वों को लागू करना राज्य का कर्तव्य होगा।"

प्रायः हमारा ध्यान केवल पहले भाग की ओर ही केन्द्रित रहता है, जिसमें यह कहा गया है कि ये न्यायसंगत नहीं है। इस कथन का क्या तात्पर्य है? इसके लिये नागरिक, इस भाग में दिये गये किसी एक अथवा अन्य किन्हीं उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिये, उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय में सरकार अथवा किसी विधानमंडल के विरुद्ध कोई परमादेश याचिका दायर नहीं कर सकते हैं। अन्यथा, यह कहा गया है कि ये देश के शासन के मूलाधार हैं। राज्य का कर्तव्य होगा कि वे विधि निर्माण में इन तत्वों को उपयोग में लाये। अतः इस भाग के अनुच्छेद 37 और अन्य अनुच्छेदों में, इस संसद के मूल कर्तव्य दिये गये हैं। इससे पूर्व के भाग में नागरिकों के मूल अधिकार दिये गये हैं, इसमें सरकारों और संसद के मूल कर्तव्यों का उल्लेख है। इस देश की लोक सभा और विधानमंडलों का यह मूल कर्तव्य है कि वे इस बात का ध्यान रखें कि कानून बनाते समय संविधान में दिये गये नीति निदेशक तत्वों का ध्यान रखा जाता है। जैसाकि उद्देश्यों एवम् कारणों संबंधी विवरण में कहा गया है जब कभी नीति निदेशक तत्वों को कार्यान्वित करने का प्रयास किया जाता है, तो प्रायः संविधान में संशोधन करना आवश्यक हो जाता है। प्रथम, चतुर्थ और सत्तरहवें संशोधनों के अवसर पर केवल तीन बार क्या हमें ऐसा करना आवश्यक लगा। मेरा विचार है कि देश के अधिकांश राजनैतिक दलों का यह विश्वास है कि भूमि संबंधी सुधार होना चाहिये। आम जनता के हित में संपत्ति का अधिकार सीमित और प्रतिबंधित होना चाहिये, किरायेदारों के पास कतिपय बहुत महत्वपूर्ण अधिकार होने चाहियें, सम्पत्ति रखने के संबंध में सीमायें निर्धारित की जानी चाहियें, आदि। मैं इसके विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं समझता। मेरा विचार है कि हममें से अधिकांश इस सिद्धांत के समर्थक हैं कि हमारे देश में समतावादी समाज का विकास होना चाहिये। ये तत्व इस भाग में दिये गये हैं। इस बात पर ध्यान देना हमारा मूल कर्तव्य है कि कानून इस प्रकार बनाये जायें कि उसके अन्तर्गत निर्धारित उद्देश्यों को पूरा किया जा सके। और जब कभी ऐसा प्रयास किया जाता है, तो प्रायः हम यह अनुभव करते हैं कि यत्र-तत्र कुछ संशोधन करना आवश्यक हो जाता है। इस सभा द्वारा प्रथम संशोधन पारित किया गया और प्रथम संशोधन पारित किये जाने के पश्चात् उसकी जांच की गई, उस संशोधन के गुणों की परख उच्चतम न्यायालय में "शंकरी प्रसाद बनाम राज्य" के अत्याधिक चर्चित मामले में की गई । इसमें मुद्दा यह उठाया गया था कि क्या संसद को अनुच्छेद 31 में दिये गये अधिकारों को निर्बन्धित करने का अधिकार है। यह

प्रश्न उठाया गया कि कोई संवैधानिक संशोधन अनुच्छेद 13 के अन्तर्गत एक कानून ही है अथवा यह इससे भी कुछ अधिक है। यह प्रश्न उठाया गया था कि जब संसद अनुच्छेद 368 के अधीन कार्य करती है तो क्या यह संवैधानिक शक्तियों का उपयोग नहीं करती है अथवा यह केवल विधायी शक्तियों का ही उपयोग करती है। उच्चतम न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की पीठ से एक मत से यह निर्णय दिया था कि उक्त संशोधन एक अच्छा संशोधन था।

तत्पश्चात् चौथा संशोधन लाया गया, जिसमें इन संशोधनों के बारे में न्यायमूर्ति श्री हिदायतुल्ला ने अपने निर्णय में कहा था कि ये संशोधन आवश्यक थे। अनुच्छेद 19 के संशोधन का उल्लेख करते हुए विद्वान न्यायाधीश ने कहा था कि यह संशोधन आवश्यक था। वह संशोधन इसलिये आवश्यक था, क्योंकि "रमेश थापर बनाम मद्रास राज्य" के मामले में यह निर्णय दिया गया था कि सार्वजनिक शांति भंग करना "राज्य की सुरक्षा को क्षति पहुंचाने" की अभिव्यक्ति में नहीं आता है। प्रथम संशोधन अधिनियम में अनुच्छेद 19 में भी संशोधन किया गया था। इन सब बातों को बताने का मेरा तात्पर्य यह है कि लोक सभा और राज्य सभा अर्थात् इस संसद ने मूल अधिकारों की उत्कृष्टता को किसी भी प्रकार कम करने का प्रयास नहीं किया है। मैं मूल अधिकारों संबंधी भाग में निर्धारित-मूल अधिकारों की उत्कृष्टता शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ, जिसका प्रयोग प्रायः अनेक व्यक्तियों द्वारा किया जाता है।

यह सब कार्यवाही अनुच्छेद 31 के संबंध में कोई व्यवस्था करने के लिये की गई थी और इस अनुच्छेद के संबंध में न्यायमूर्ति श्री हिदायतुल्ला ने कहा था कि "हमारे संविधान ने यह सिद्धांत स्वीकार कर लिया है कि सम्पत्ति का अधिकार मूल अधिकार है। मेरी राय में इस श्रेणी में इसे रखना एक गलती थी।" यह उन्होंने कहा था।

यहां इस समय हम लोग संविधान में संशोधन करने के प्रश्न पर विचार कर रहे हैं और यदि हम संविधान में संशोधन करना चाहते हैं, यदि हम उस भाग में से अनुच्छेद 31 को लेना चाहते हैं, जहां इस समय वह है, तो इस संसद को ऐसा करने का अधिकार होना चाहिए।

मैं उन 21 संशोधनों की बात कर रहा हूं, जो हमने 17 वर्षों की अवधि के दौरान किये हैं। इंगलिश कान्स्टीट्यूशन के अन्तर्गत ब्रिटिश संसद को कोई भी कानून पारित करने का अधिकार है। ब्रिटिश संसद की विधायी शक्ति असीम है।

ब्रिटेन की संसद के पास असीमित शक्तियां होने के कारण हमें ऐसे मामलों की जानकारी नहीं है, जिनमें ब्रिटेन की संसद ने बन्दी-प्रत्यक्षीकरण अथवा अधिकारों के

विधेयक का अधिकार वापस लेने का कानून पारित किया हो। यह राजनैतिक विवेक का मामला है। आपके पास शक्ति है तो है किन्तु आप उसका उपयोग नहीं करते। इसीलिए मैंने विगत समय में किये गये 21 संशोधनों का उल्लेख किया है। संसद ने उनमें से किसी भी संशोधन में किसी भी अधिकार को कम नहीं किया। इस विचार का कोई आधार नहीं है। जिसके बारे में यह प्रचार किया गया है कि लोगों के अधिकार कम करने के लिए संविधान में अनेक बार संशोधन किया गया है। संविधान में अनेक उपबंधों को स्पष्ट करने के लिए अनेक बार इसमें संशोधन किया गया है, और तीन बार इसलिए संशोधन करना पड़ा ताकि राज्य सरकारों को भूमि संबंधी आवश्यक सुधारों तथा अन्य सुधारों के लिए शक्ति प्राप्त हो सके।

श्री नाथ पै के विधेयक के संबंध में मैं अपने मित्रों से मौलिक अधिकारों के संशोधन संबंधी उपबंधों को कुछ क्षणों के लिए भूल जाने का अनुरोध करूंगा। क्या हमें यह विश्वास है अथवा विश्वास नहीं है कि हमारे संविधान में संविधान संशोधन के लिए उपबंध निहित है? अथवा क्या हम यह चाहते हैं कि एक ऐसा कठोर संविधान जिसमें संशोधन करना संभव नहीं हो? यदि संविधान में संशोधन करने का अधिकार होना चाहिए, तो क्या यह कहना उचित होगा कि अधिकार व्याख्या संसद को प्रदत्त अवशिष्ट विधायी शक्तियों के रूप में होनी चाहिए? संविधान में संशोधन करना ऐसा महत्वहीन मामला नहीं है जिसके लिए प्रदत्त अवशिष्ट शक्तियों का सहारा लिया जाए। संविधान में एक उपबंध है, जो पर्याप्त रूप से स्पष्ट नहीं है। श्री नाथ पै समझते हैं कि उनके विधेयक से यह स्पष्ट हो सकता है। मैं समझता हूं कि अनेक अन्य पहलुओं पर विचार किया जाना है। संयुक्त समिति की बैठक में हम सभी पहलुओं पर विचार कर सकते हैं और श्री नाथ पै के विधेयक पर आधारित विधान संसद में प्रस्तुत कर सकते हैं, जो उचित मामलों में संशोधन के अधिकार और सुरक्षोपायों, जहां आवश्यक है, की गारन्टी देगा।

ग्यारह न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दिये गये निर्णय पर विचार करना होगा और यह भी विचार करना होगा कि क्या कदम उठाए जाएं। यहां बहुत ही रुचिकर पहलू है, जैसाकि श्रीविश्वनाथम ने एक दिन उल्लेख किया था। सभी ग्यारह न्यायाधीश याचिकादाताओं पर मुकदमा न चलाने के बारे में सहमत थे। याचिकादाताओं को इस मामले में सफलता नहीं मिली। उनमें से पांच न्यायाधीशों ने कहा कि संविधान में संशोधन करने का अधिकार संविधान की धारा 368 में निहित है। उनमें से पांच न्यायाधीशों ने प्रतिकूल निर्णय देने का सिद्धांत प्रतिपादित किया था। उनमें से एक न्यायाधीश श्री हिदायतुल्ला, जिन्होंने उन पांच न्यायाधीशों के साथ यह घोषणा करने में साथ दिया था कि संविधान के अनुच्छेद 368 में संविधान संशोधन का अधिकार निहित नहीं है, ने अपने इस निर्णय का समर्थन किया कि

संविधान में सत्रहवें संशोधन की धारा (2) अच्छी है।

अब, स्थिति पूर्णतः उलझ गई है। मैं आपका ध्यान इस निर्णय के एक भाग की ओर आकर्षित करता हूं। यह एक आम धारणा है कि अधिकांश न्यायाधीशों ने कहा है कि संविधान में संशोधन करने के लिए संविधान सभा की बैठक की जानी चाहिए। मैं आपको यह बताना चाहता हूं कि ग्यारह न्यायाधीशों में से केवल एक न्यायाधीश ने कहा कि यह संभव है। यह न्यायाधीश श्री हिदायतुल्ला थे।

अन्य किसी भी न्यायाधीश ने इस मत का स्पष्ट रूप से समर्थन नहीं किया। मैं यह भी कहना चाहता हूं कि यदि अनुच्छेद 368 के अंतर्गत बहुमत के निर्णय के आधार पर एक विधेयक पारित होता है तो वह भी कानून होगा। और इस कानून से संविधान में संशोधन कैसे किया जा सकता है, जबकि संसद सीधे ऐसा नहीं कर सकती? यहां ये सभी कठिनाइयां हैं।

प्रश्न यह है कि क्या संसद को सांविधानिक शक्तियां प्राप्त हैं। मैं इस सभा के माननीय सदस्यों को पुनः याद दिलाना चाहता हूं कि जब बाबू राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में केन्द्रीय कक्ष में संविधान सभा की बैठक हुई थी, तो वे सांविधानिक शक्तियों का प्रयोग कर रहे थे और जब इन्हीं सदस्यों की बैठक मावलंकर की अध्यक्षता में इस कक्ष में हुई, तब वे विधायी शक्तियों का प्रयोग कर रहे थे।

मैं न्यायाधीश श्री मुल्ला द्वारा कुछ दिन पूर्व कही गई इस बात को बड़ा महत्व देता हूं कि हम एक कतिपय विधि से कार्य करते हुए सांविधानिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं और कतिपय अन्य विधि से कार्य करते हुए हम विधायी शक्तियों का प्रयोग करते हैं। मेरा मानना है कि अनुच्छेद 368 में यह व्यवस्था है और प्रक्रिया निहित है, जिसके अंतर्गत हम सांविधानिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं अतः इसमें केवल प्रक्रिया का ही उल्लेख नहीं है, अपितु यदि संसद संविधान के अनुच्छेद में बताई गई विधि के अनुसार कार्य करे तो संविधान में संशोधन करने की संसद की शक्ति का भी उल्लेख है। क्या श्री नाथ पै के विधेयक से यह स्थिति स्पष्ट होती है। यदि वहां अन्य स्पष्टीकरण आवश्यक है, उदाहरण के लिए अनुच्छेद 13 में कुछ नियत किया गया है, हम सभी दलों के सदस्य संयुक्त समिति की बैठक में शान्त और निष्पक्ष वातावरण में इस मामले पर चर्चा करें और एक रिपोर्ट तैयार करें, जिस पर बाद में विचार किया जा सके।

राज्य सभा और राज्य विधान परिषदों के लिए सदस्य नामनिर्देशित करने की राष्ट्रपति की शक्ति*

दार्शनिक दृष्टि से देखें तो सभी नामनिर्देशनों के पीछे प्रश्रय की भावना होती है। यदि नामनिर्देशित सभी 12 व्यक्ति निश्चित और असंदिग्ध रूप से अनुच्छेद 80 में उल्लिखित श्रेणियों के हों तब भी वहां प्रश्रय की भावना अवश्य होगी चाहे नामनिर्देशन करने वाला अधिकारी कोई भी हो। यदि इसे पूर्णतः राष्ट्रपति के विवेक पर ही छोड़ दिया जाता है तो भी साहित्य, कला आदि में सैकड़ों महत्वपूर्ण सक्षम सदस्यों में से केवल एक या दो ही नामनिर्देशित किए जाएंगे। अतः जहां कहीं भी नामनिर्देशन होता है वहां प्रश्रय की भावना होती है।

जब हम संविधान सभा में चर्चा कर रहे थे, तो संविधान सभा अलग-अलग निर्वाचकों की व्यवस्था को समाप्त करना और अल्पसंख्यकों को गारंटी देना चाहती थी तथा अल्पसंख्यकों संबंधी समिति की सिफारिश पर ही संविधान में राज्य विधान सभाओं और लोक सभा में नामनिर्देशन का उपबंध किया गया था। हो सकता है कि राज्यपालों में निहित शक्ति का कुछ मामलों में दुरुपयोग भी हुआ हो।

हमने राज्य सभा के लिए नामनिर्देशन के लिए उपबंध आयरलैंड गणराज्य में प्रचलित व्यवस्था के अनुरूप किया है। स्वर्गीय सर बी० एन० राय जो इस मामले में संविधान सभा को परामर्श दे रहे थे, ने वास्तव में आयरलैंड तथा अन्य देशों का दौरा किया था और वे हमारे संविधान में आयरलैंड के संविधान की कुछ बातें रखना चाहते थे। राज्य नीति के निदेशक तत्व वहां के संविधान से ही लिए गए थे तथा 250 सदस्यों के सदन में केवल 12 व्यक्तियों के नामनिर्देशन, जो 4 और 5 प्रतिशत के बीच है का उपबंध किया गया। जब आप प्रश्न पर देखें तो पाएंगे कि, कुल मिलाकर, अब तक जितने भी व्यक्ति नामनिर्देशित किए गए हैं वे अपने-अपने क्षेत्र के सम्मानित और सक्षम व्यक्ति थे। यदि

---

*उक्त विषय पर श्री सी० सी० देसाई द्वारा पेश किए गए संविधान संशोधन विधेयक पर चर्चा में भाग लेते हुए; लोक सभा वाद-विवाद, 2 फरवरी, 1969, पृष्ठ 332-38.

आप चाहते हैं कि राज्य सभा में ऐसे व्यक्ति हों, तो मेरे विचार में यह एक अच्छा उपबंध है।

अब यदि आप इस मामले को बहुत गहराई से देखें तो पाएंगे कि सारी राज्य सभा प्रश्रय का परिणाम है। राज्य सभा के सदस्य एक निर्वाचक मंडल द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं जिसमें विधान सभा के निर्वाचित सदस्य होते हैं तथा प्रत्येक राजनीतिक दल विधान सभा में अपनी सदस्य संख्या को ध्यान में रखकर कुछ व्यक्तियों को प्रश्रय प्रदान करता है, वे निर्वाचित हो जाते हैं और राज्य सभा में आ जाते हैं। मैं नाम नहीं लेना चाहता परन्तु राज्य सभा में इस समय केरल के एक सदस्य हैं जिन्हें वहां के संयुक्त मोर्चे के कहने पर यह समझौता करना पड़ा कि वह तीन वर्ष के पश्चात् सेवा निवृत्त हो जाएंगे ताकि किसी अन्य दल के किसी अन्य सदस्य को उनका स्थान मिल सके। मैं उसमें दोष नहीं निकाल रहा हूं। कांग्रेस भी ऐसा कर सकती है। मेरा कहने का तात्पर्य यह है कि राज्य सभा के तथाकथित निर्वाचित सदस्यों के मामले में भी यही है कि वे सब राजनीतिक दलों के प्रश्रय के कारण ही वहां है।

विधान सभाओं द्वारा निर्वाचित राज्य सभा सदस्यों के संबंध में यह कहा जा सकता है कि उनके पीछे भी बहुत हद तक प्रश्रय की भावना होती है।

इसलिए जहां कहीं भी नामनिर्देशन और ऐसे चुनाव होते हैं, जो नामनिर्देशनों के तुल्य हैं उनके पीछे प्रश्रय की भावना होती है। आखिरकार यह ऊपरी सदन है और वहां कुछ प्रतिष्ठित सदस्यगण सभा की गरिमा बढ़ाते हैं। यह एक समीक्षक निकाय है। वहां के कुछ सदस्य सभा के वाद-विवाद में प्रायः बहुत अच्छा योगदान करते रहे हैं। मैं अधिक लोगों का नाम न लेकर केवल एक व्यक्ति का नाम लेना चाहूंगा। और वह हैं श्री कौल। वह हाल ही तक लोक सभा के सचिव थे और वह प्रायः वाद-विवाद में भाग लेते हैं और विधान विज्ञान के क्षेत्र में अपने लम्बे अनुभव के आधार पर वाद-विवाद में अपना उत्कृष्ट योगदान करते हैं। वे एक अत्यंत महत्वपूर्ण हित का प्रतिनिधित्व करते हैं।

यहां अनेक लेखक और कवि हैं। किसी ने स्वर्गीय मैथलीशरण गुप्त का नाम लिया है। हो सकता है कि उनके जैसा कोई कवि राज्य सभा में कविताएं न सुना सके। परन्तु यह प्रतिष्ठित लेखकों, साहित्कारों, वैज्ञानिकों, आदि को सम्मानित करने का एक ढंग है।

मैं इस बात से इंकार नहीं करता कि मानवीय संस्थाओं में दोष नहीं होते। यदि एक व्यक्ति को नामनिर्देशित किया जाता है, तो प्रश्न उठता है कि उसे ही क्यों किया गया किसी और को क्यों नहीं। इसका उत्तर संस्कृत का अशोकवानिक न्याय नामक प्रसिद्ध न्याय होगा। बाल्मीकी से सीता को लंका में रावण की वाटिका के किसी कोने में अशोक

वृक्ष के नीचे बैठे होने का वर्णन किया है। प्रश्न यह था कि बाल्मीकि ने यह क्यों कहा कि सीता उस वृक्ष विशेष के नीचे बैठी थी? उत्तर था कि यदि बाल्मीकि ने यह कहा होता कि वह किसी दूसरे पेड़ के नीचे बैठी थी, तो भी यह प्रश्न किया जा सकता था कि उसने यह क्यों कहा कि वह उस पेड़ के नीचे बैठी थी। इसे संस्कृत में, विभिन्न न्यायों में, अशोकवानिकान्याय कहा जाता है।

इसी प्रकार यदि आप किन्हीं सक्षम लेखकों में से "क" को नामनिर्देशित करते हैं तो प्रश्न उठता है कि "ओह! आपने उसे प्रश्रय प्रदान किया है।" परन्तु यदि आप "ख" को नामनिर्देशित करते हैं तो भी ऐसा ही प्रश्न किया जा सकता है।

न्यायपालिका और संसदीय विशेषाधिकार*

मेरा यह अनुरोध है कि मुझे स्पष्ट करने की अनुमति दी जाये कि इस मामले में क्या हुआ था। उस दिन (3.4.1970) जब सदन में इस मामले पर चर्चा की गई थी यह विषय कार्यसूची में नहीं था जिससे कि मुझे इसके बारे में पता चल सकता। माननीय सदस्यों, विशेष रूप से श्री मधु लिमये ने यह मामला उठाया था और कहा था कि उन्हें यह नोटिस मिला है और कि अनुच्छेद 105 के अंतर्गत इस आशय की पूरी उन्मुक्ति है और उच्च न्यायालय इस मामले में कोई निर्णय नहीं कर सकता। जब उच्च न्यायालय से इस तरह मामला आया तो मैंने निवेदन किया था कि मुझे महान्यायवादी से अनुरोध करना चाहिए कि वह उच्च न्यायालय में हाजिर होकर अनुच्छेद 105 की महत्ता पर प्रकाश डाले। महान्यायवादी से उच्च न्यायालय में ऐसा कराने के लिए यह किया गया कि इस मामले में भारत संघ को भी पक्षकार बनाने के लिये सरकारी वकील द्वारा एक याचिका दायर की गई। इस प्रकार भारत संघ उच्च न्यायालय में चल रही सुनवाई में एक पक्षकार बन गया। उच्च न्यायालय ने निर्णय किया कि उन्हें यह ज्ञात है कि अनुच्छेद 105 के अंतर्गत संसद सदस्यों द्वारा सदन में कही गई बातों के लिए उन्हें पूरी उन्मुक्ति प्राप्त है। उच्च न्यायालय ने इस बात को स्वीकार कर लिया था अब वादी उस वाद में उच्चतम न्यायालय में एक याचिका दायर करना चाहता था और उसके लिए उच्च न्यायालय से एक प्रमाण पत्र की आवश्यकता थी। इस प्रमाण पत्र में केवल यह कहा जाता है कि इस वाद में ऐसा प्रश्न अंतर्ग्रस्त है जिसका धनराशि के रूप में मूल्य 20,000 रुपये से अधिक है, अन्यथा किसी प्रमाण पत्र की जरूरत नहीं होती है। चूंकि भारत संघ उच्च न्यायालय में एक पक्षकार था, उच्चतम न्यायालय में भी वह एक पक्षकार बना। उस दिन मैंने, सारांशतः यह सुझाव दिया था कि आपको इस मामले में कोई विनिर्णय अथवा निर्णय

*कुछ संसद को जारी किये गये नोटिसों के संबंध में उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा की गई कुछ टिप्पणियों के बारे में तथा सभा को यह स्थिति स्पष्ट करने में कि अपील दायर किये जाने संबंधी कोई नोटिस न्यायालय द्वारा भेजा गया समन नहीं होता है, विधि मंत्री की असफलता के बारे में लोक सभा में प्रक्रिया और कार्य संचालन संबंधी नियमों के नियम 377 के अंतर्गत एक प्रस्ताव पर चर्चा में भाग लेते हुए। लोक सभा वाद-विवाद, 22 अप्रैल, 1970 पृष्ठ 238-258।

नहीं देना चाहिए। क्योंकि मैं महान्यावादी से अनुरोध करुंगा कि वह उच्चतम न्यायालय में भी हाजिर होकर इस बात को कहें। तदनुसार मुझे बताया गया है कि कल महान्यायवादी ने उच्चतम न्यायालय को संबोधित किया था और इस मामले को अंतिम रूप से निपटाने के लिये 29 अप्रैल की तारीख तय की गई है।

समनों और अपील दायर किये जाने संबंधी नोटिसों के बारे में कुछ भ्रम रहा है। मेरे पास इस नोटिस की प्रति नहीं है। चाहे इसे नोटिस कहा जाये या समन बात एक ही है। न्यायालयों से जारी होने वाले समनों में भी यह कहा जाता है कि वाद की सुनवाई अमुक तिथि को होगी; यदि आप उपस्थित होना चाहें तो उपस्थित हो सकते हैं, यदि आप उपस्थित नहीं होंगे तो वाद का एक तरफ निर्णय कर दिया जायेगा। श्री मधु लिमये ने बिल्कुल यही नोटिस पढ़ा था। जिस समय मैं इस सदन में अपने विचार व्यक्त कर रहा था तो मेरी दोहरी भूमिका थी। संसद सदस्य के रूप में मेरा कर्तव्य संसद सदस्य के विशेषाधिकारों की रक्षा करना है; सरकार के सदस्य के रूप में मेरा कर्तव्य यह भी सुनिश्चित करना है कि न्यायपालिका और संसद के बीच किसी प्रकार का टकराव पैदा न हो।

मैं कह रहा था कि मैं महान्यायवादी से अनुरोध करुंगा कि वह न्यायालय में हाजिर होकर संविधान के उपबंधों के बारे में बतायें ताकि इस सदन के विशेषाधिकार किसी भी तरह से प्रभावित न हों। महान्यायवादी को संसद में बुलाने का तो प्रश्न ही नहीं था। किसी ने इसकी मांग नहीं की थी, किसी ने इस मामले को नहीं उठाया है। महान्यायवादी को स्वतः ही इस सदन में आने का अधिकार प्राप्त है और जब कभी ऐसा अवसर पैदा होगा तो आ जायेंगे। अतः आज सरकार की ओर से मेरे और संसद सदस्यों तथा श्री वेंकटसुब्बय्या और आपके बीच इस बात पर कोई मतभेद नहीं है कि जहां तक अनुच्छेद 105 का संबंध है, इसके अंतर्गत संसद सदस्यों को अप्रतिबंधित एवं पूर्ण उन्मुक्ति प्राप्त है। मैंने यह बात कही है। मेरे विचार से सदन में इस बात पर आम सहमति है। मैंने यह भी कहा था कि इस मामले की ओर उच्चतम न्यायालय का ध्यान भी आकर्षित किया जायेगा, और तदनुसार, कल महान्यायवादी ने यह कार्य किया और इस मामले को 29 अप्रैल को पहले वाद के रूप में सुनवाई के लिए रखा गया है।

अब श्री कुण्डु तथा अन्य सदस्यों ने प्रश्न उठाया है कि क्या उच्चतम न्यायालय को

स्वयं इस मामले की जांच नहीं करनी चाहिए थी और नोटिस या समन जारी करने से इन्कार कर देना चाहिए था। उच्चतम न्यायालय नोटिस या तो न्यायिक निर्णय के बाद जारी करता है अथवा वह सामान्य दैनिक प्रक्रियाओं सबंधी होता है। अब, जैसे ही पंजीयक कार्यालय में याचिका दर्ज की जाती है और न्यायालय की समुचित फीस आदि का भुगतान कर दिया जाता है तो दैनिक प्रक्रिया स्वरूप नोटिस जारी कर दिया जाता है। और उस अवसर पर मैंने कहा था कि "मुझे ज्ञात नहीं कि जो समन जारी किये गए हैं वे न्यायिक आदेश, हैं या प्रशासनिक आदेश हैं।" मैंने निश्चय ही यह बात कही थी। यदि उच्चतम न्यायालय से कोई प्रशासनिक आदेश जारी किया जाता है तो मेरे विचार से, संसद सदस्यों की ओर से शिकायत की कोई गुंजाइश नहीं रहती है। न्यायिक आदेश इसी तरह आता है। कुछ मामलों में तो न्यायाधीश को ही निर्णय करना होता है कि कहां नोटिस जाना चाहिये और कहां नहीं जाना चाहिये। मुझे इस बात के बारे में जानकारी नहीं है, मेरे पास उनकी प्रतियां नहीं हैं। आज सुबह समाचार पत्रों से पता चला कि यह अपील दायर किये जाने का नोटिस था। किन्तु फिर भी मैंने जो कहा, वह संगत बात थी। चाहे यह न्यायिक आदेश है या प्रशासनिक आदेश, मैंने कहा था कि अनुच्छेद 105 के सन्दर्भ में, हमें पूरी उन्मुक्ति मिली हुई है। उच्च न्यायालय में महान्यायवादी ने यह बात कही थी और फिर कल उच्चतम न्यायालय में भी यही कहा था। उन्हें यह स्पष्ट करना था कि वह किस की ओर से न्यायालय में उपस्थित हुए हैं और उन्होंने कहा था मैं भारत संघ की ओर से उपस्थित हुआ हूं।"

चूंकि उन्हें एक नोटिस भेजा गया है और भारत संघ को पक्षकार बनाया गया है। यह उच्च न्ययालय द्वारा किया गया था। यदि ऐसा नहीं होता तो महान्यायवादी तभी उच्चतम न्यायालय में उपस्थित हो सकते हैं जब आप उन्हें इसके लिए प्राधिकृत करें।

मैं महान्यायवादी का बचाव नहीं कर रहा हूं।* मैंने कहा था कि उस दिन या आज महान्यायवादी के संसद में हाजिर होने का प्रश्न हीं नहीं उठाया गया था। मैंने यह कहा था कि मैं महान्यायवादी से उच्चतम न्यायालय में हाजिर होने और न्यायालय को अनुच्छेद 105 के उपबंध दिखाने के लिए अनुरोध करुंगा। जब कोई प्रशासनिक आदेश जारी किया जाता है जैसाकि इस मामले में किया गया तो मेरे विचार से, इससे हमारे किसी अधिकार का अतिक्रमण नहीं हुआ है। इस वाद को खारिज करने हेतु तथा यह घोषणा करने के लिये कि अनुच्छेद 105 के अंतर्गत सम्पूर्ण उन्मुक्ति प्राप्त है, न्यायालय को मामले की जांच करनी होगी। हमें इस पर आपत्ति नहीं उठानी चाहिये। यह निर्णय चाहते हैं कि हम में से जो कोई भी संसद में कुछ भी कहें, उसके लिये हमारे विरुद्ध किसी भी नागरिक को

---

*श्री मधु लिमये तथा अन्य सदस्यों द्वारा महान्यायवादी के बारे में की गई कतिपय टिप्पणियों के उत्तर में।

कोई मुकदमा दर्ज करने का अधिकार नहीं है। ऐसा किसी न्यायिक आदेश द्वारा ही किया जा सकता है। इसलिए इस मामले को उच्चतम न्यायालय के समक्ष रखा जा रहा है। कल न तो हम में से किसी ने और न ही अध्यक्ष महोदय ने कोई गलती की है। महोदय, आपने मेरा यह सुझाव स्वीकार कर लिया कि महान्यायवादी द्वारा उच्चतम न्यायालय के समक्ष यह बात स्पष्ट की जाये। सभा भी मेरे इस सुझाव से सहमत हुई थी।

यदि कोई अपील दायर की जाती है तो अनुच्छेद 105 के अंतर्गत हमारे विशेषाधिकारों का प्रश्न उठता है किन्तु हमारे विशेषाधिकारों का हनन तभी होगा जब कोई निर्णय हमारे विरुद्ध होगा। इस बात की घोषणा करने के लिये कि अनुच्छेद 105 के अंतर्गत संसद सदस्यों को पूर्ण विशेषाधिकार और पूर्ण उन्मुक्ति प्राप्त है, उस प्रश्न पर विचार किया जाना होगा।

कल उच्चतम न्यायालय में मुख्य न्यायधीश ने पूछा था कि जब मानहानि का मुकदमा अपीलकर्ता और अन्य प्रतिवादियों के बीच है तो क्या कारण है कि भारत संघ को इस मुकदमें में एक पक्षकार कैसे बनाया गया। महान्यायवादी ने बताया कि क्योंकि उच्च न्यायालय में भारत संघ को भी मुकदमें में एक पक्षकार बना लिया था, अतः अपील में भी वह एक पक्षकार होगी। मुख्य न्यायधीश ने कहा कि उन्हें मामला याद है और उन्होंने यह महसूस किया कि अध्यक्ष को दोष नहीं दिया जा सकता है। यदि उन्हें सही स्थिति के बारे में सूचित कर दिया जाता तो यह कठिनाई पैदा ही नहीं होती। विशेष रूप से जबकि उच्चतम न्यायालय ने अपील दायर होने पर केवल एक नोटिस ही जारी किया था। जब यह कहा गया कि विधि मन्त्री द्वारा सदन को यह स्थिति बता दी जानी चाहिये थी तो महान्यायवादी ने न्यायालय को माननीय विधि मन्त्री की टिप्पणियों से अवगत कराया जिनसे पता चला कि नोटिस जारी करने का कार्य प्रशासनिक मामला था, न्यायिक नहीं।

उच्चतम न्यायालय में कल यही हुआ था। जबकि मैं यह मानता हूं और मैं मानता रहूंगा कि किसी संसद सदस्य द्वारा सदन में कुछ भी बोले जाने के लिये उसके विरुद्ध की गई किसी भी कार्यवाही से, अनुच्छेद 105 के अन्तर्गत उसका विशेषाधिकार भंग होता है, साथ ही मैं यह भी कहूंगा कि यदि उच्चतम न्यायालय अथवा अन्य किसी न्यायालय में कोई मुकदमा दायर किया जाता है—मामले को कार्यालय में संख्यांकित किया जाता है और सम्मन जारी किये जाते हैं अथवा नोटिस जारी किया जाता है—दोनों एक ही चीज है तो मेरे विचार में उस स्थिति में विशेषाधिकार भंग नहीं होता। उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय में प्रतिदिन हजारों मामले, रिट याचिकायें,

अपील याचिकायें आदि दायर किये जाते हैं अतः आशा नहीं की जा सकती कि न्यायाधीश इन सभी चीजों का अध्ययन करने के पश्चात ही नोटिस जारी करेंगे।

मैं तो महान्यायवादी से यह अनुरोध करने का प्रयास कर रहा हूँ कि वह उच्चतम न्यायालय को यह बताये कि उनके समक्ष विचाराधीन इस याचिका में उल्लिखित आरोप उन बातों को लेकर लगाया गया है जो कुछ सदस्यों ने सदन में कही हैं। इसमें न्यायाधीशों की न्यायिक सूचना इसका अभिप्राय अनुच्छेद 105 को न्यायाधीशों की न्यायिक जानकारी में लाना नहीं है। उनका ध्यान तो इस बात की ओर दिलाया जा रहा है कि यह वाद अनुच्छेद 105 के अन्तर्गत आता है। इस बात का उल्लेख किया जाना जरूरी है और इसी उद्देश्य के लिए महान्यायवादी इस महीने की 29 तारीख को इस वाद को अनुच्छेद 105 के अन्तर्गत प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे हैं। हमने उच्च न्यायालय में वस्तुतः यही किया था। विशेषाधिकार भंग का प्रश्न केवल तभी उत्पन्न होगा जब इस सदन के किसी सदस्य के सम्बन्ध में कोई कार्यवाही की जायेगी।

भारतीय रजिस्ट्रीकरण (संशोधन) विधेयक। 1968*

(विधेयक को राज्य सभा में विचारार्थ प्रस्तुत करते हुए)

यह एक सामान्य संशोधन है। भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 30(2) के अंतर्गत बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के जिला रजिस्ट्रारों को भारत के किसी भी भाग में स्थित अचल सम्पत्ति के दस्तावेज की रजिस्ट्री के अधिकार प्राप्त हैं धारा 67 में यह व्यवस्था है कि रजिस्ट्री होते ही ये दस्तावेज उस उप-रजिस्ट्रार के कार्यालय को भेजे जाने चाहिए जिसके क्षेत्राधिकार में यह सम्पत्ति स्थित है। रजिस्ट्रीकरण की यह प्रक्रिया केवल इन तीन प्रेसीडेंसी नगरों के जिला रजिस्ट्रार के मामले में लागू है। यह महसूस किया गया है कि कम से कम इन तीन प्रेसीडेंसी नगरों की तरह दिल्ली वाणिज्यिक, औद्योगिक और सभी दृष्टियों से इतना महत्वपूर्ण नगर बन चुका है कि दिल्ली के जिला रजिस्ट्रार को भी उक्त अधिकार सौंपना आवश्यक हो गया है, आप जानते हैं कि भारत के सभी भागों, सभी राज्यों के लोग सरकारी कार्यों और अन्य प्रयोजनों से दिल्ली रहेंगे। वे अपने क्षेत्र में सम्पत्ति का लेन-देन करने के इच्छुक होंगे और यह वांछनीय होगा कि दिल्ली के जिला रजिस्ट्रार को यह अधिकार सौंप कर इन लोगों को आवश्यक सुविधा प्रदान की जाऐ। यही इस संशोधन का मूल उद्देश्य है।

मैंने अधिनियम के शीर्षक से भारतीय शब्द हटाने का भी प्रस्ताव किया है। क्योंकि संसद द्वारा पारित अधिनियमों में 'भारतीय' शब्द लगाने की प्रथा स्वाधीनता के बाद संसद की विधायी प्रक्रिया में प्रचलित नहीं रही है। उदाहरण के लिये हमने 1963 में परिसीमा अधिनियम पारित किया था। पहले इसे भारतीय परिसीमा अधिनियम कहा जाता था। अब

---

*राज्य सभा वाद-विवाद, 14 अगस्त, 1968 कॉ॰ 3341-42, 3356-63, 3365-66।

1963 के इस अधिनियम को परिसीमा अधिनियम कहा जाता है। क्योंकि भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान ब्रिटिश संसद को भी भारत के लिये कानून बनाने का अधिकार प्राप्त था और भारतीय संसद के कानूनों और भारत में लागू कुछेक ब्रिटिश कानूनों में भेद करने के लिये हम अपने अधिनियमों को भारतीय अधिनियम कहते थे अर्थात् भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, भारतीय कम्पनी अधिनियम, भारतीय आयकर अधिनियम आदि। स्वाधीनता के बाद हमने इस प्रक्रिया में परिवर्तन किया है। अतः जब भी ऐसा अवसर आता है, विधि मंत्रालय द्वारा भारतीय शब्द को हटा दिया जाता है ताकि हम विधायी प्रक्रिया का पालन कर सकें।

मुझे आशा है कि यह सामान्य विधेयक सर्वसम्मति से पारित होगा। *इस संबंध में दो तरह के विरोध प्रकट किये गये है,** एक श्री लोकनाथ मिश्र द्वारा, जिसका समर्थन श्री राजनारायण ने किया है और दूसरा श्री यादव और श्री चौधरी द्वारा, मैं इस विधेयक के विरोध में पहले श्री लोकनाथ मिश्र और श्री राजनारायण द्वारा प्रकट इस राय पर विचार करता हूँ कि उन्हें इस मामले में वास्तविक रूप से कुछ आशंका है। मैं उन्हें कहता हूँ कि इसमें आशंका करने की कोई बात नहीं है। महोदय, यदि कोई रजिस्ट्री बम्बई, कलकत्ता अथवा मद्रास अथवा दिल्ली में लागू की जाती है तो ऐसा नहीं है कि इसे गोपनीय ढंग से प्रवर्तित किया जा सकता है। यदि उप-रजिस्ट्रार के कार्यालय जिसके क्षेत्राधिकार में सम्पत्ति स्थित है, में यह रजिस्ट्री की गई हो तो उससे भी वही निष्कर्ष निकलेगा। यदि कलकत्ता और दिल्ली में रजिस्ट्री के मामलों में धोखाधड़ी की जा सकती है तो यह गांवों में भी जहां सम्पत्ति स्थित है संभव है। रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के हवाले से यह पता चलता है कि अचल सम्पत्ति के लेन-देन के मामलों में, उप-रजिस्ट्रार के पास रखी पुस्तक संख्या एक में संबंधित बातों का उल्लेख किया जाता है। अचल सम्पत्ति अथवा उपहार संबंधी सभी प्रकार के लेन-देनों का चाहे वे गिरवी, बंधक रखने, विभाजन अथवा तुरन्त बिक्री के रूप में हों का उप-रजिस्ट्रार के पास रखी पुस्तक संख्या एक में उल्लेख किया जाना चाहिए, और जब इस प्रविष्टि को पुस्तक संख्या एक में दर्ज किया जाता है तब इसे सार्वजनिक सूचना के रूप में मान लिया जाता है। इस तरह सम्पत्ति अंतरण अधिनियम में इसे इस प्रकार परिभाषित किया गया है।

सम्पत्ति का पंजीयन सार्वजनिक सूचना के समान है यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति की सम्पत्ति के सौदे के बारे में जानकारी प्राप्त करना चाहता है, तो नियम यह है

---

*उस समय कुछ संशोधन के सुझाव दिये गये।

**सदस्यों द्वारा उठाये गये मुद्दों का उत्तर देते हुए।

कि वह सम्पत्ति जिस उप-पंजीयक कार्यालय के अधिकार-क्षेत्र में आती है वह उसी कार्यालय से इस हेतु सम्पर्क करे उदाहरण के लिए यदि मुझे ऋण देने वाला कोई व्यक्ति, हालांकि मैंने किसी से ऋण नहीं ले रखा है, इस बात से चिंतित है कि मैं अपनी सम्पत्ति का हस्तांतरण उसका ऋण न चुकाने की दृष्टि से कर रहा हूं, तो सामान्य तौर पर वह यह करेगा कि वह इस बात का पता उस उप-पंजीयक कार्यालय से लगाएगा जिसके अधिकार क्षेत्र में मेरी सम्पत्ति स्थित है। मान लीजिए यह संशोधनकारी विधेयक पारित कर दिया जाता है और मुझे दिल्ली के जिला पंजीयक कार्यालय में रजिस्ट्री कराने की सुविधा प्राप्त हो जाती है, तो इसके बाद इस रजिस्ट्री से सम्बन्धित तथा और ब्यौरा उस उप-पंजीयक कार्यालय में तत्काल भेज दिया जाएगा जिसके अधिकार-क्षेत्र में उक्त सम्पत्ति स्थित है। यह उपबंध रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 66 और 67 में विद्यमान है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि यदि रजिस्ट्री बम्बई, कलकत्ता, मद्रास अथवा दिल्ली में करायी जाती है, तो उक्त अधिनियम की धारा 67 के उपबंधों के अन्तर्गत तत्संबंधी तथ्य उप-पंजीयक कार्यालय को तत्काल भेज दिए जाएंगे जहां सम्पत्ति स्थित है। इस प्रक्रिया को एक प्रिवी काउंसिल जज द्वारा "डेरीवेटिव रजिस्ट्रेशन" कहा गया है और रजिस्ट्रीकरण तब लागू होगा जब ऐसा ब्यौरा दूसरे कार्यालय में पहुंच जाएगा और वहां पुस्तकों में दर्ज कर लिया जायेगा।

अभी, मेरे मित्र, श्री मिश्र ने कुछ ऐसे व्यक्तियों का हवाला दिया है जिन्होंने कलकत्ता तथा अन्य स्थानों पर रजिस्ट्री करायी है। किन्तु ऐसा करके वे किसी अन्य व्यक्ति के साथ धोखाधड़ी अथवा जालसाजी नहीं कर पाएंगे क्योंकि कलकत्ता में करायी गयी रजिस्ट्री का भी वही प्रभाव होगा जो उस गांव में कराई गई रजिस्ट्री का होगा, जहां वह सम्पत्ति स्थित है। अतः, इस बारे में कोई चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।

श्री राजनारायण ने फिक्टीशस (जाली/बेनामी) रजिस्ट्रियों की बात कही है। मैं समझता हूं उन्होंने 'शैम ट्रांजेक्शन' का उल्लेख किया है। मिथ्या सौदा (शैम ट्रांजेक्शन) वह है जो वास्तविक नहीं होता बल्कि 'बेनामी' जैसे सौदे होते हैं।

ऐसा पंजीकरण नई दिल्ली, अथवा लखनऊ अथवा बम्बई या किसी भी गांव में कराया जा सकता है। सम्पत्ति का हस्तांतरण करने के इरादे के बिना अपनी पत्नी, अपने पुत्र अथवा अपने किसी घनिष्ठ मित्र के नाम सम्पत्ति का हस्तांतरण किया जा सकता है इनमें सम्पत्ति का वास्तव में हस्तांतरण होना ही नहीं है और ऐसे सौदों को न्यायालयों में 'शैम ट्रांजेक्शन' अथवा 'फिक्टीशस ट्रांजेक्शन' की संज्ञा दी जाती है। ऐसे सौदे इन महानगरों में हो सकते हैं, तो वे अन्य किसी भी स्थान पर हो सकते हैं।

अब बात यह आती है कि इसके लिए दिल्ली को ही क्यों चुना गया था? इसका कारण यह है। स्वतंत्रता से पहले कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास को चुना गया था क्योंकि वे भारत में ऐसे महत्वपूर्ण स्थान थे जहां विभिन्न राज्यों के लोग विभिन्न उद्देश्यों से निवास करते थे। प्रश्न यह था कि क्या उन्हें सम्पत्ति हस्तांतरित करने के लिए पैसा खर्च करके गांव जाना चाहिए। इसी तर्क पर यह सुविधा दिल्ली के लोगों को क्यों नहीं प्राप्त होनी चाहिए, अथवा उन लोगों को भी क्यों प्राप्त नहीं होनी चाहिए जो मैसूर, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, केरल आदि भारत के अन्य भागों से आकर यहां रहते हैं? कोई ऐसा व्यक्ति जो किसी दूरस्थ राज्य से आकर यहां रहता है और वह अपनी पत्नी अथवा अपने किसी निकट संबंधी को अपनी सम्पत्ति उपहार स्वरूप देना चाहता है। मानलो वह सम्पत्ति 500 रुपए मूल्य है। क्या यह उचित होगा कि वह गांव जाए और इस प्रयोजन के लिए सैंकड़ों रुपए खर्च करे इसके अतिरिक्त, आज भारत सरकार तथा अन्य प्राधिकरणों की अनेक वित्तीय संस्थाएं हैं और लोग विकास संबंधी प्रयोजनों आदि हेतु धनराशि इनसे प्राप्त करने के लिए इन निकायों के पास अपनी सम्पत्ति बन्धक रखते हैं अथवा सम्पत्ति के आधार पर जमानत देते हैं। यदि वह व्यवस्था दिल्ली में उपलब्ध करा दी जाती है, तो उनके लिए ऐसा करना आसान हो जाएगा। यह विधेयक इसी उद्देश्य से लाया गया है। जैसाकि मैंने कहा है, किसी अन्य स्थान के बजाय दिल्ली को इसलिए चुना गया है क्योंकि यह एक ऐसा स्थान है जहां भारत के सभी भागों के लोग विभिन्न प्रयोजनों से स्थायी रूप से निवास करते हैं।

मेरे माननीय मित्र श्री यादव तथा श्री चौधरी ने दो आपत्तियां उठाई थीं। एक आपत्ति "भारतीय" शब्द का लोप किए जाने के बारे में थी। मैं अपने तर्कों को दोहराना नहीं चाहता। मैं केवल इस कारण से कम भारतीय नहीं हो जाता कि मैं अधिनियम में जो भारतीय संसद द्वारा पारित किया जाता है, "भारतीय" शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहता। यह विधायी परम्परा है जो स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् विकसित हुई है। उदाहरण के लिए, इंग्लैंड में यदि वे ब्रिटिश पार्लियामेंट में कोई-कोई अधिनियम पारित करते हैं, तो वे उसे 'इंगलिश एक्ट' नहीं कहते हैं क्योंकि वह ब्रिटिश पार्लियामेंट का अधिनियम है। इसी भांति यह भारतीय संसद का अधिनियम है और यह मान लिया जाता है कि यह पूरे भारत में लागू होगा। मैंने कई उदाहरण दिए हैं। एक प्रश्न यह पूछा गया कि सभी अधिनियमों के संबंध में ऐसा क्यों नहीं किया जाता है? हालांकि मैं विद्यमान सभी अधिनियमों से 'भारतीय' शब्द एक ही विधेयक लाकर हटा सकता हूं किन्तु मैंने ऐसा करना उचित नहीं समझा। वस्तुतः यह इतनी महत्वपूर्ण बात नहीं है। दरअसल, यदि धारा 30 में संशोधन करना आवश्यक न होता तो मैं 'भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम' से

'भारतीय' शब्द को हटाने के लिए यह संशोधन न लाया होता। साथ ही मैं यह भी बताना चाहूंगा कि धारा 30(2) में यह संशोधन एक बहुत ही उच्च शक्ति प्राप्त निकाय, अर्थात् भारतीय विधि आयोग की सिफारिश पर लाया जा रहा है, जिसने अपने 31 वें प्रतिवेदन के पैरा 4 में यह कहा है कि:

"हमारी राय में, निम्नलिखित बातों से सुझाए गए संशोधन का औचित्य सिद्ध होता है"

पहली बात यह है कि दिल्ली एक महानगर है जहां भारत के अनेक राज्यों के तथा विदेशों के लोग निवास करते हैं। दिल्ली में रह-रही पार्टियों के बीच अन्य स्थानों पर स्थित अचल सम्पत्ति के खरीद-फरोख्त के मामलों की संख्या में वृद्धि हो रही है और इसमें आगे और भी वृद्धि होने की संभावना है। दूसरी बात यह है कि एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र के रूप में दिल्ली का तेजी से विकास हो रहा है और इसी कारण से दिल्ली के निवासियों के बीच सम्पत्ति बन्धक रखने आदि के अनेक मामले हो रहे हैं जिनसे दिल्ली से बाहर स्थित सम्पत्ति प्रभावित होती है। तीसरी बात यह है कि दिल्ली में उच्च कोटि के कानून विद और दस्तावेज तैयार करने वाले उपलब्ध हैं जिनसे सम्पत्ति की स्थिति का ठीक-ठीक और सुस्पष्ट रूप से निरुपण किए जाने की आशा की जाती है। चौथी बात यह है कि दिल्ली केन्द्र सरकार की राजधानी है, और केन्द्रीय सरकार को पूरे भारत में स्थित अचल सम्पत्तियों के बारे में अनेक सौदे करने पड़ते हैं।

बजाय इसके कि पार्टियों को उस उप-पंजीयक के पास जाना पड़े जिसके अधिकार-क्षेत्र में संबंधित सम्पत्ति स्थित है जैसाकि वर्तमान समय में होता है यह उपयुक्त होगा। यदि दिल्ली के पंजीयक को भारत में किसी भी स्थान पर स्थित किसी भी सम्पत्ति से संबंधित किसी भी दस्तावेज को रजिस्टर करने की शक्ति प्रदान कर दी जाये।

*** *** *** ***

इस सुझाव के संबंध में कि यह अधिकार न केवल दिल्ली को बल्कि चार लाख से अधिक जनसंख्या वाले सभी नगरों को दिया जाना चाहिए मुझे यह कहना है कि हम यह अधिकार नगरों को नहीं दे रहे हैं, बल्कि जिला पंजीयकों को प्रदान कर रहे हैं। रजिस्ट्रीकरण अधिनियम तो समवर्ती सूची में शामिल विषय से संबंधित है। यदि हम यह शक्ति भारत में प्रत्येक पंजीयक को प्रदान कर दें, तो यह मेरी दृष्टि में एक स्वागत योग्य कदम होगा। यह इस दृष्टि से भारत में एकता लाने में प्रभावी सिद्ध होगा कि हम भारत के किसी भी कोने में किसी भी जिला पंजीयक के पास जाकर देश के किसी भी स्थान पर स्थित सम्पत्तियों के बारे में रजिस्ट्रियां करा सकेंगे तथा तत्संबंधी तथ्य और ब्यौरा संगत उपबन्धों के अन्तर्गत भारत के अन्य भागों को भेज दिये जायेंगे। किन्तु कठिनाई यह है

कि रजिस्ट्रीकरण अधिनियम से संबंधित प्रशासनिक शक्तियां राज्य सरकारों के पास है। मान लीजिये कि संसद् रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 30 (2) के अन्तर्गत इलाहाबाद के जिला पंजीयक को शक्ति देने का निश्चय करती है, तो इस बारे में उत्तर प्रदेश राज्य सरकार के साथ परामर्श करना आवश्यक होगा क्योंकि उन्हें रजिस्ट्रीकृत सौदे का ब्यौरा आदि भेजने के लिए व्यवस्था करनी होगी, इसके लिए अधिक कर्मचारियों की आवश्यकता होगी एवं अन्य व्यवस्था भी करनी पड़ेगी।

इस सुझाव के संबंध में, कि एक राज्य में किसी पंजीयक को उसी राज्य के किसी अन्य जिले में अचल सम्पत्ति से संबंधित दस्तावेजों को रजिस्ट्रीकृत करने की शक्ति प्रदान की जाये, कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन यह एक ऐसा मामला है जिसके बारे में राज्य सरकार को स्वयं विचार करना चाहिए। चूंकि यह कानून समवर्ती सूची में शामिल विषय के बारे में है इसलिए यह राज्य सरकार पर निर्भर करता है कि वह इस दिशा में रजिस्ट्रीकरण अधिनियम में अपेक्षित संशोधन करे। मैं तो इस समय यही कह सकता हूं कि यदि कोई राज्य सरकार उस राज्य में रजिस्ट्रीकरण कानून के संबंध में ऐसा संशोधन करना चाहती है, तो उसे केन्द्रीय सरकार तथा भारत के राष्ट्रपति ऐसा करनें के लिए अपनी स्वीकृति प्रदान कर देंगे। किन्तु, यहां एक बड़ा प्रश्न यह है कि क्या एक राज्य में जिला पंजीयक को भारत में किसी स्थान पर स्थित अचल सम्पत्तियों के संबंध में सौदों की रजिस्ट्री करने की शक्ति उसी प्रकार नहीं दी जानी चाहिये जैसी शक्ति दिल्ली के जिला पंजीयक को देने की मांग की गई है। इस की सिफारिश विधि आयोग के छठे प्रतिवेदन में की गई है। किन्तु, इस बारे में अनेक आपत्तियां उठाई गई हैं और अब उन आपत्तियों पर विचार किया जा रहा है। अपने 31 वें प्रतिवेदन में उन्होंने कहा है:

> "छठे प्रतिवेदन (रजिस्ट्रीकरण अधिनियम) पर प्राप्त टिप्पणियों के संबंध में विधि आयोग का प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाने के पश्चात प्राप्त हुआ था। यह सुझाव छठे प्रतिवेदन पर टिप्पणी के रूप में नहीं दिया गया था। बल्कि यह एक स्वतंत्र सुझाव था। उठाया गया यह मुद्दा ऐसा था जिस पर विचार किया जाना आवश्यक है। इसलिए, इसे पर अलग से विचार किया गया है। यदि धारा 30 (2) में कोई अन्य संशोधन किया जाना हम वांछनीय समझेंगे, तो इस पर बाद में विचार किया जायेगा, जब हम छठे प्रतिवेदन पर प्राप्त टिप्पणियों के संबंध में अपना प्रतिवेदन देंगे।"

यदि आप इस आशय का संशोधन चाहते हैं कि एक राज्य में, मान लीजिये आंध्र प्रदेश में किसी पंजीयक को अन्य राज्यों जैसे मैसूर में स्थित सम्पत्तियों के बारे में रजिस्ट्री करने की शक्ति दी जाये तो संसद् में विधेयक लाना आवश्यक होगा और विधि आयोग।

ने कहा है कि वह इस मामले की जांच कर रहा है और दूसरा प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जायेगा। इसलिए इस संदर्भ में सभा से मेरा अनुरोध है कि वह इस संशोधनकारी विधेयक को सर्वसम्मति से पारित करे।

* * *

जब मैंने लोक सभा में इस विधेयक को पुरःस्थापित किया था, तो श्री रणधीर सिंह ने कहा था "हम इस विधेयक को पारित करेंगे" और मैंने सोचा कि सभा के प्रत्येक सदस्य की यही इच्छा होगी। लेकिन इस पर काफी चर्चा हुई है और मैं इस चर्चा से लाभान्वित हुआ हूँ।

मुद्दों को एक-एक करके लेना उचित रहेगा। श्री लोबो प्रभु ने कहा कि उन्हें 'भारत' और 'भारतीय' शब्द पर गर्व है। इन पर मुझे भी गर्व है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि "भारतीय" शब्द को जोड़ा जाये, अथवा विधेयक को 'भारतीय रजिष्ट्रीकरण अधिनियम' कहा जाये। अभी आधा घंटा पहले, हमने 'शपथ विधेयक' पारित किया है और उसमें 'भारतीय' शब्द नहीं है। 1873 का अधिनियम 'भारत शपथ अधिनियम' के नाम से जाना जाता था। किन्तु अब हमने इसके स्थान पर शपथ अधिनियम ही रखा है। प्रत्येक भारतीय कानून के साथ "भारतीय" शब्द का प्रयोग करने की प्रथा भारत में औपनिवेशिक शासन के दिनों में प्रचलित थी। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् संसद् द्वारा पारित किसी भी विधान में "भारतीय" शब्द नहीं है।

श्री लोबो प्रभु द्वारा उठाई गई यह आपत्ति भी, कि हमें केन्द्रीय अधिनियमों की राज्य अधिनियमों से अलग पहचान रखनी चाहिए, उचित नहीं है। रजिस्ट्रीकरण विषय ही को लें। यह एक समवर्ती सूची का विषय है और कोई भी राज्य, उदाहरणार्थ मैसूर राज्य अपने यहां के लोगों की सुविधानुसार केन्द्रीय अधिनियम में संशोधन कर सकता है। तब यह मैसूर रजिस्ट्रीकरण अधिनियम कहा जायेगा। अतः मेरा निवेदन है कि "भारतीय" शब्द का लोप किए जाने में कुछ भी गलत नहीं है। हमने औपनिवेशिक दिनों के दौरान भारत में केन्द्रीय सरकार द्वारा अपनाई जाने वाली प्रथा का परित्याग कर दिया है।

एक अन्य कारण भी था। उस समय अनेक भारतीय रियासतें थीं और इसलिए "भारतीय" शब्द का प्रयोग करके यह सुनिश्चित किया जाता था कि भारत सरकार के कानूनों के बारे में कोई भ्रांति न हो।

तत्पश्चात्, श्री प्रभु और अन्य ने कहा कि इसे अन्य नगरों के मामले में भी लागू किया जाना चाहिए। इस बारे में मेरा विचार है कि दिल्ली की स्थिति भारत के अन्य नगरों से अलग है। यह भारत की संघीय सरकार की राजधानी है। यह एक ऐसा स्थान है जहां सभी राज्यों से लोग आकर रहते हैं और इस दृष्टि से यह कलकत्ता, बम्बई और मद्रास से भी अधिक महत्वपूर्ण है। इस कानून को अपने-अपने राज्य की राजधानियों में लागू करना राज्य विधान मण्डलों की अपनी मर्जी पर निर्भर है। उदाहरण के लिए यह उत्तर प्रदेश विधान मंडल की अपनी मर्जी पर निर्भर है कि वह ऐसा कानून पारित करे जिसके द्वारा लखनऊ अथवा इलाहाबाद में से जिस नगर को भी वे इस प्रयोजनार्थ राजधानी मानें, उसमें प्रदेश के प्रत्येक भाग की सम्पत्ति से सम्बन्धित दस्तावेजों का रजिस्ट्रीकरण किया जाए। क्या इस सभा के सदस्य इस बात पर सहमत नहीं होंगे कि इस विधेयक का देश के विभिन्न भागों से भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए दिल्ली में एकत्र हुए हम सभी सदस्य स्वागत करेंगे? यह स्थिति किसी अन्य नगर पर, चाहे वह भारत में कितना ही महत्वपूर्ण क्यों न हो, लागू नहीं होती है।

अन्य आलोचनाओं के संबंध में, मैं कह सकता हूं कि यह रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 30(2) का एक सामान्य संशोधन है। श्री रणधीर सिंह ने रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की सम्भवतः सबसे अधिक महत्वपूर्ण धारा 17 के बारे में, जहां तक सम्पत्ति संबंधी कानून अर्थात् जो दस्तावेज अनिवार्य रूप से पंजीयन के योग्य हैं, अथवा जो पंजीयन के योग्य नहीं हैं आदि का संबंध है, अनेक वक्तव्य दिये हैं तब, भ्रष्टाचार का उल्लेख किया गया था....

इस मामले पर राज्य सरकारों को ध्यान देना होगा। जैसा कि आप जानते हैं कि पंजीयन के संबंध में प्रत्येक राज्य में निर्देशिकाएं मौजूद हैं। भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 78 के अन्तर्गत यह भी राज्य सरकारों की अपनी मर्जी पर निर्भर है कि वे किसी भी प्रकार के शुल्कों के संबंध में कानून बनायें। मैंने अन्य राज्यों की पंजीयन निर्देशिकाओं को देखा है। जहां तक संसद का संबंध है, कानून पारित करने के उपरान्त इसका कार्य समाप्त हो जाता है, क्योंकि विधान के समवर्ती भाग के संबंध में कार्यकारी शक्ति राज्य सरकारों के पास होती है। अतः मैं भ्रष्टाचार और अन्य मुद्दों संबंधी वक्तव्यों पर कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं हूं।

कुछ माननीय सदस्यों ने, यह एक बहुत महत्वपूर्ण मुद्दा उठाया है कि कृषक अपने दस्तावेजों का शीघ्र रजिस्ट्रीकरण कराने में सफल हो रहे हैं। श्री प्रभु ने रजिस्ट्रीकरण की समस्याओं के बारे में कहा। चूंकि उन्होंने स्वीकार कर लिया है—'स्वीकार कर लिया है' शब्दों के औचित्य सिद्ध करने के बारे में मैं कुछ नहीं कहूंगा—उन्होंने बताया है कि वह एक जमींदार हैं, अतः उन्हें पंजीयन अधिकारियों के बारे में अधिक जानकारी है। एक जमींदार न होने के नाते मुझे पंजीयन कार्यालय जाने का अधिक मौका नहीं मिला है। इन बातों पर राज्य सरकारों को ध्यान देना होगा और मुझे विश्वास है कि श्री लोबो प्रभु और अन्य सदस्य इस बात पर सहमत होंगे कि इस मामले में विधि मंत्री या इस प्रयोजनार्थ कोई केन्द्रीय मंत्री, पंजीयन कार्यालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार यदि कोई है, के संबंध में बहुत-कुछ कर सकते है।

आम आलोचना के उत्तर में मुझे यही कहना है।

3

सेवाओं संबंधी मामले

एक
हड़ताल का अधिकार*

यहां उठाया गया यह मुद्दा एक कानूनी, संवैधानिक विधि सम्मत प्रश्न है और एक प्रकार से कुछ जटिल है, अतः मैं सभा से अनुरोध करता हूं कि यदि इस मामले की व्याख्या करते हुए मुझे कुछ देर हो जाये तो इसके लिए वह मुझे क्षमा करें। प्रश्न है कि क्या हड़ताल करने संबंधी कोई मौलिक अधिकार है.....

उच्चतम न्यायालय का निर्णय इस प्रकार है:

"यहांयह उल्लेख करना अनिवार्य है कि चूंकि हड़ताल करना कोई मौलिक अधिकार नहीं है, इसलिए किसी कानून को जहां तक वह हड़ताल पर प्रतिबन्ध लगाता है, समाप्त नहीं किया जा सकता।"

यह निर्णय उच्चतम न्यायालय की संविधान न्यायपीठ द्वारा दिया गया है। इसका उल्लेख ए०आई०आर० 1962, उच्चतम न्यायालय पृष्ठ 1172, कालम 2, पैरा 20 में किया गया है। यदि यह मौलिक अधिकार होता तो इसका संविधान के भाग-तीन में उल्लेख किया जाता। जिस बात का संविधान के भाग-तीन में उल्लेख नहीं किया गया है उसे मौलिक अधिकार नहीं माना जा सकता। जहां लिखित संविधान है, वहां आप इस प्रकार किसी मामले में संविधान में निहित तथ्यों से इतर मौलिक अधिकार की बात नहीं उठा सकते। अक्सर इसका हवाला दिया जाता है और मेरे माननीय मित्र श्री डांगे ने अनुच्छेद 23 का हवाला दिया है और मुझे विश्वास है कि आप ऐसा नहीं समझेंगे कि इसमें कोई गुंजाइश है। अब यह देखें कि किस मामले में कानून बनाने की मांग की गई है? इस विधेयक के खण्ड 2 में दो उपबन्ध है—100क और 100ख, जिन पर कानून बनाने की मांग की गई है। 100क इस प्रकार पठित है:

'यदि किसी रेलवे कर्मचारी को ड्यूटी पर एक स्टेशन अथवा स्थान से दूसरे स्टेशन

---

*भारतीय रेल (संशोधन) विधेयक, 1967 पर वाद-विवाद में हस्तक्षेप करते हुए; लोक सभा वाद-विवाद, 27नवम्बर, 1967। का० 210—214.

अथवा स्थान के लिए चल रही किसी रेलगाड़ी रेलकार अथवा किसी चल-स्टाक की जिम्मेदारी सौंपी जाती है और वह नियत स्टेशन अथवा स्थान पर पहुंचने से पहले अपनी ड्यूटी छोड़ देता है.....'

अनुच्छेद 100 क में इस बात का उल्लेख किया गया है। मैं पूरा अनुच्छेद नहीं पढ़ना चाहता। अनुच्छेद 100ख कहता है:—

'यदि कोई रेलवे कर्मचारी ड्यूटी पर या अन्यथा अथवा कोई व्यक्ति किसी रेलगाड़ी, रेल-कार या रेल विभाग के अन्य चल स्टॉक के चलने में बाधा डालता है। बाधा डालने का कारण बनता है अथवा बाधा डालने का प्रयास करता है या उस पर अवैध कब्जा करता है, धरना देता है, उसे अनधिकृत रूप से अपने पास रखता है.... आदि-आदि।

अब सवाल यह है कि यदि इस देश की सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न संसद एक ऐसा कानून बनाती है जिससे कोई रेलवे कर्मचारी रेलगाड़ी में सफर करने वाले सैकड़ों यात्रियों को दो स्टेशनों के बीच में न छोड़ सके तो क्या इस कानून में कोई गलत बात है?

उन्हें संविधान के भाग-तीन अर्थात् मौलिक अधिकारों संबंधी अध्याय के ऐसे उपबन्धों को स्पष्ट करना चाहिए, जो इस पर प्रतिबन्ध लगाते हैं। इस बारे में स्थिति यह है कि संसद सातवीं अनुसूची की सूची—एकमें उल्लिखित किसी भी विषय पर कोई अधिनियम बना सकती है,कानून बना सकती है बशर्ते इस परभाग—तीन का कोई एक या दूसरा अनुच्छेद कोई प्रतिबन्ध न लगाता हो। सातवीं अनुसूची की सूची एक में निहित विषयों के बारे में संसद की विधायी शक्ति सर्वोच्च है, बशर्ते इस पर भाग तीन के किसी अनुच्छेद द्वारा कोई प्रतिबन्ध न लगता हो। अनुच्छेद 14 समानता का हवाला देता है। इसमें समानता का नियम निहित है। अब यह सर्वविदित है कि अनुच्छेद 14 के अनुरूप ही विधानमंडल इस अधिकार का वर्गीकरण करता है। इसमें ऐसा नहीं है कि एक ही नियम सभी तरह के लोगों पर लागू होगा। समानता का नियम कतिपय वर्ग के अन्तर्गत आने वाले लोगों पर लागू होगा। यह सभा पर निर्भर है कि वह कतिपय श्रेणियों के अन्तर्गत आने वाले कर्मचारियों और उन रेलवे कर्मचारियों की श्रेणियों, जिनसे संबंधित स्थिति का अनुच्छेद 100क अथवा 100ख में हवाला दिया गया है, को वर्गीकृत करे। यह वर्गीकरण का जाना-पहचाना नियम है। इसलिए यहां अनुच्छेद 14 लागू नहीं होगा।

यदि कभी कानूनी अथवा विधायी क्षमता संबंधी कोई मुद्दा उठाया जाता है तो आप

इस मुद्दे पर चर्चा के लिए सहमत हो जाएंगे। लेकिन पीठासीन अधिकारी इस प्रश्न पर निर्णय नहीं करेंगे। इसमें दुश्चिंचता की गुंजाइश ही कहां है? यदि आप अनुच्छेद 100क और 100ख को असंवैधानिक समझते हैं तो आप उच्चतम न्यायालय में जाइए। अगले ही दिन आपका मामला खारिज हो जाएगा।

सरकार सोच समझकर ही कोई कानून बनाती है।

दो

आवश्यक सेवाएं बनाए रखने का विधेयक, 1968*

इस सम्बन्ध में यहां विपक्ष में मेरे मित्रों द्वारा उठाए गए लगभग सभी मुद्दों को उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों में उठाया जा चुका है। मेरे विचार में इस मामले में दिया गया अत्यन्त महत्वपूर्ण तर्क यह है कि अनुच्छेद 19 कतिपय मौलिक अधिकारों को स्वीकार करता है और उनकी गारन्टी देता है । इन अधिकारों का अनुच्छेद 19 में उल्लेख किया गया है । यह अनुच्छेद काफी बड़ा है। उनमें से सबसे महत्वपूर्ण अधिकार जो कि वर्तमान मुद्दे से सम्बद्ध है, संघगठित करने का अधिकार और भाषण आदि की स्वतंत्रता का अधिकार है। दूसरे पक्ष में मेरे विद्वान मित्रों द्वारा दिए गए तर्क से यह निष्कर्ष निकलाः जब इन अधिकारों को अनुच्छेद 19 के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है तथा गारन्टी दी गई है, तो क्या इसका मतलब यह नहीं है कि अनुच्छेद 19 के अन्तर्गत प्रत्याभूत अधिकार स्थापित करने के लिए इसमें एक सहवर्ती अधिकार, यदि मैं इस शब्द का प्रयोग कर सकता हूं, भी अन्तर्निहित होगा।

मुझे उच्चतम न्यायालय के कम से कम चार ऐसे मुकदमों की जानकारी है जिनमें इस मामले पर चर्चा की गई थी और निष्कर्ष निकाले थे। उच्चतम न्यायालय द्वारा इस मामले पर निर्णय देने के पश्चात् हमारे लिए आवश्यक नहीं है कि पहले सिद्धान्तों की जांच करें और इस मुद्दे पर बहस करें। अतः मैं आपका ध्यान उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा अनुच्छेद 19 के अन्तर्गत गारंटीशुदा प्रत्याभूत अधिकारों के अनुसरण में हड़ताल के अधिकार के बारे में दिए गए निर्णय की ओर आकर्षित करना चाहता हूं।

मैं पृष्ठ 171 पर ए० आई० आर० 1962 उच्चतम न्यायालय के संदर्भ में उल्लेख कर यह बताना चाहता हूं कि संविधान पीठ ने कहा है किः—

"किसी मजदूर संघ के मुकदमें के बारे में पूर्व कथन लागू करने से स्थिति यह होगीः

---

*विधेयक के पुनः स्थापन के समय उठाई गई आपत्तियों का उत्तर देते हुए, लोक सभा वाद-विवाद, 5 दिसम्बर, 1968, कालम, 294—301.

संस्था या संघ बनाने का अधिकार उप-खण्ड (ग) द्वारा प्रत्याभूत है, संघ के सदस्यों का सम्मेलन करने का अधिकार उप-खण्ड (ख) द्वारा प्रत्याभूत है; भारत के राज्य क्षेत्र में अबाध संचारण करने का अधिकार उप-खण्ड (घ) द्वारा, उनका अपनी समस्याओं पर चर्चा करने और अपने विचार देने का अधिकार उप-खण्ड (क) द्वारा, उनका सम्पत्ति रखने का अधिकार उप-खण्ड (च) द्वारा प्रत्याभूत है और इसी तरह इन स्वतन्त्रताओं में से प्रत्येक स्वतन्त्रता पर अनुच्छेद 19 के खण्ड 2 से 6 तक ऐसे प्रतिबंध लगाने की व्यवस्था है जो संदर्भानुसार उचित हो; निष्पक्षता और उदारता की भावना से भाग (तीन) में अनेक अनुच्छेदों द्वारा प्रत्याभूत प्रत्येक स्वतन्त्रता की व्याख्या करना एक बात है; "इन अधिकारों में से प्रत्येक अधिकार प्रदान करने पर बल देने की कल्पना करने वाला लक्ष्य राप्त करने के लिए आवशयक संलग्न अथना शामिल एक सम्बद्ध अधिकार के रूप में प्रत्येक प्रत्याभूत अधिकार को पढ़ना दूसरी बात है। अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) के उप-खण्ड (ग) द्वारा प्रत्याभूत संघ बनाने के अधिकार के साथ यह मूल अधिकार नहीं है प्रत्येक लक्ष्य प्राप्त करने हेतु कि जिन उद्देश्यों के लिए संघों की स्थापना की जाए, वे सभी उद्देश्य पूरे हों, अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) के उप खण्ड (ग) की अति उदार व्याख्या करने पर भी यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि मजदूर संघों को प्रभावशाली सामूहिक समझौते या सामूहिक समझौते के रूप में हड़ताल या इस प्रकार का कोई प्रत्याभूत अधिकार—मूल भूत अधिकार है। हड़ताल करने का अधिकार अथवा ताला-बन्दी की घोषणा करने के अधिकार को उचित औद्योगिक विधान द्वारा नियन्त्रित अथवा प्रतिबन्धित किया जा सकता है—संविधान द्वारा नहीं—और ऐसे विधान की वैधता का परीक्षण अनुच्छेद 19 में निर्धारित मानदण्ड के संदर्भ में नहीं बल्कि बिल्कुल भिन्न दृष्टि से इस पर विचार करना होगा।"

मैंने इस निर्णय का उल्लेख इसलिए किया है क्योंकि यह विपक्ष के मेरे विद्वान मित्रों द्वारा उठाए गए इन मुद्दों का प्रत्यक्ष उत्तर है कि क्या अनुच्छेद 19 के अन्तर्गत प्रत्याभूत समझौते के अधिकार, संघ बनाने के अधिकार, भाषण देने की स्वतन्त्रता के अधिकार आदि के साथ हड़ताल का सम्बद्ध अधिकार मूलभूत अधिकार है?

उक्त मामले में यह प्रश्न उठाया गया था और इसे उच्चतम न्यायालय ने खारिज कर दिया।

सरकारी कर्मचारी आदि द्वारा हड़ताल करने के अधिकार के बारे में वर्ष 1960 में जारी किए गए अध्यादेश के संबंध में राधे श्याम बनाम भारत संघ के मुकदमे में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिया गया सीधा निर्णय है, जो वर्ष 1965 में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए इस मामले के निर्णय के पृष्ठ 311 पर प्रकाशित है। इसका भी आपात काल के कारण नहीं, बल्कि संविधान के अनुच्छेदों के आधार पर निर्णय लिया गया था। आपात काल के

दौरान अनुच्छेद 19 अस्तित्व में नहीं था। इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा था:

"हड़ताल आदि पर प्रतिबन्ध लगाने संबंधी इन धाराओं की संवैधानिकता पर इस आधार पर चुनौती दी गई है कि वे अनुच्छेद 19 (1) के (क) और (ख) खण्डों द्वारा प्रत्याभूत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करती है। खण्ड (1) (क) के अन्तर्गत सभी नागरिकों को भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता और खण्ड 1 (ख) के अन्तर्गत शांतिपूर्वक तथा बिना शस्त्रों के एकत्र होने का मौलिक अधिकार है। इन मौलिक अधिकारों पर अनुच्छेद 19 के खण्ड (2) और (3) में निहित शर्तों के अन्तर्गत उचित प्रतिबन्ध लगाए जा सकते हैं। हमारा मत है कि अध्यादेश के ये उपबन्ध अनुच्छेद 19 (1) के उप खण्डों (क) और (ख) में प्रतिष्ठापित मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं करते हैं। अनुच्छेद 19 (1) का अध्ययन करने से पता चलता है कि हड़ताल करने संबंधी कोई मौलिक अधिकार नहीं है और जो यह इस अध्यादेश में हड़ताल को गैर-कानूनी घोषित करने का प्रावधान किया गया है।"

मैं अन्य निर्णयों का उल्लेख करके आपका समय नहीं लेना चाहता हूं।

अनुच्छेद 23 का भी उल्लेख किया गया है। इस अनुच्छेद का उल्लेख सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। इस अनुच्छेद को ठीक तरह नही पढ़ा गया है। लेकिन मेरे लिए और आपके लिए सौभाग्य की बात है कि यह मामला वर्ष 1960 अध्यादेश के संबंध में मुंबई उच्च न्यायालय में विचारार्थ उठाया गया था।

यह संवैधानिक प्रश्न है। मैं यह निर्णय भी पढ़ूंगा। अनैतिक व्यापार और बेगार तथा अन्य प्रकार के बलात् श्रम से हम सभी परिचित हैं। अनुच्छेद 23 में अनैतिक व्यापार और बेगार तथा इस प्रकार का अन्य जबर्दस्ती लिया हुआ श्रम प्रतिनिषिद्ध किया गया है।

बेगार प्रतिनिषिद्ध करने के पश्चात् संविधान सभा ने सोचा था कि अन्य प्रकार के बलात् श्रम भी हो सकते हैं और वे इसके विरुद्ध उपबन्ध रखना चाहते थे। उप-अनुच्छेद (2) में यह व्यवस्था की गई है कि:

"इस अनुच्छेद की किसी बात से, राज्य को सार्वजनिक प्रयोजन के लिए बाध्य सेवा लागू करने में रुकावट न होगी। ऐसी सेवा लागू करने में केवल कार्य, मूल वैश, जाति या वर्ग या इन में से किसी के आधार पर राज्य कोई विभेद नहीं करेगा।"

अतः, उप-अनुच्छेद में भी यही कहा गया है कि राज्य सरकार को सार्वजनिक प्रयोजन के लिए बाध्य सेवा लागू करने में कोई रुकावट न होगी परन्तु यह सेवा बेगार अथवा अन्य प्रकार के बलात् श्रम की श्रेणी की नहीं होगी। ऐसी सेवा लागू करने में धर्म,

मूलवंश, जाति या वर्ग या इनमें से किसी के आधार पर राज्य कोई विभेद नहीं करेगा और समयोपरि कार्य के प्रति तर्क वैध तब होगा यदि यह कहने का मौका पड़े कि मुसलमान लोग समयोपरि कार्य करेंगे और हिन्दू नहीं करेंगे आदि।

मैं आपका ध्यान इस तथ्य की ओर भी दिलाना चाहता हूं कि गृह मंत्री ने एक अध्यादेश के स्थान पर यह विधेयक प्रस्तुत किया है। हम कुछ भी नया नहीं कर रहे हैं। इस अध्यादेश को उच्चतम न्यायालय एवं दो उच्च न्यायालयों में चुनौती दी गई है। इनमें से एक उच्च न्यायालय में याचिका को खारिज कर दिया गया है। अध्यादेश अभी लागू है।

इस सदन में आप सहित हम जैसे अनेक उदार, समाजशील दार्शनिक यह कहेंगे कि हड़ताल का अधिकार छीनना बहुत बुरी बात है परन्तु नियम 72 के अंतर्गत प्रश्न यह है कि क्या यह सदन की वैधानिक क्षमता से परे है।

इस संसद की कोई भी कार्यवाही अवैध नहीं है, यह संसद किसी भी मामले में कानून बना सकती है बशर्ते कि वह मामला उसकी कानून बनाने की क्षमता से बाहर न हो। कानूनी अक्षमता तभी उत्पन्न होगी जब वह मामला या तो राज्य की सूची में हो अथवा मूलभूत अधिकारों में यह वर्जित हो। आपने जो बातें उठाई हैं, उनके बारे में गृह मंत्री जी उपयुक्त समय पर उत्तर देंगे। विधेयक पर विचार करते समय सदन में इन सब बातों पर विचार होगा, आज प्रश्न कानून बनाने का क्षमता का है।

मैंने श्री मधु लिमये जी द्वारा कुले की प्रसिद्ध पाठ्य पुस्तक में से पढ़े गए उद्धरण को सुना। कुले ने ऐसा क्या कहा है? यह पैरा मैंने पहले भी पढ़ा है। इसमें कहा गया है कि सयुक्त राज्य अमरीका में कांग्रेस को किसी मामले पर कानून बनाने की प्रक्रिया शुरू करने से पहले इस बात पर विचार करना चाहिए कि क्या संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान के अंतर्गत इस विषय पर कानून बनाना कांग्रेस की वैधानिक क्षमता के अंतर्गत आता है, यहां इस संदर्भ में नियम 72 बनाया गया है ताकि इस विधेयक के प्रस्ताव का गृह मंत्री, मैं, जो कि विधि मंत्री हूं और मंत्रिमंडल के और सदस्य तथा अन्य इस बात पर विचार करें कि इस विषय पर कानून बनाना संविधान के अंतर्गत वैध है या नहीं। यदि यहां किये गये तर्क वितर्क से संदेह उत्पन्न होता है तो नियम 72 में यह भी व्यवस्था है कि विधेयक का प्रस्तावक इस विधेयक को वापस ले ले। लेकिन उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिर्णयों के कारण हमें इस मामलें में संदेह नहीं है, इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि आपने जो कहा है उसे ध्यान में रखते हुए विधेयक पर विचार करते समय उसमें सुधार करने होंगे। हमें

केवल इस बात का निर्णय करना है कि वैधानिक दृष्टि से इस विषय पर कानून बनाने की सक्षमता है कि नहीं।

अन्य गौण प्रश्न भी उठाए गए। इन पर खण्ड-वार विचार करते समय इन पर विचार किया जा सकता है। मेरा कहना यह है कि नियम 72 बनाया गया है, इसे इस तरीके से बनाया गया है कि जब संसद के बारे में किसी विधेयक की सांविधिकता का प्रश्न उठे, तो संसद उस मामले में कोई निर्णय नहीं लेगी और इसे न्यायालयों पर छोड़ दिया जाएगा। लेकिन उच्चतम न्यायालय की चार संविधान न्यायपीठों द्वारा दिए गए निर्णय के प्रकाश में तथा इस मामले पर विचार करने के बाद, भारत सरकार के विधि सलाहकार होने के नाते मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं है कि संसद इस विषय पर कानून बनाने के लिए संवैधानिक रूप से सक्षम है।

यह हो सकता है कि आपका इस मामले में या किसी अन्य मामले में मतभेद हो। उदाहरणतया किसी ने कहा कि किसी पुलिस अधिकारी को बिना वारंट के किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने की अनुमति दी जानी चाहिए, कानूनी भाषा में कहें तो इस प्रकार कहा जाएगा कि इसके अंतर्गत किया गया कोई अपराध संज्ञेय अपराध होगा या नहीं, ये ऐसे मसले हैं जिनपर बहस करते समय विस्तार से विचार किया जाना चाहिए।

अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों का कल्याण*

एक

अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति

महोदया, जैसाकि आप जानती हैं, संविधान में हमने अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों को विशेष महत्व दिया है तथा उनके लिए विशेष सुरक्षोपाय किए हैं। उदाहरणार्थ, संविधान के अनुच्छेद 335 में प्रावधान है कि राज्य सरकारों तथा केन्द्रीय सरकार को इन समुदायों के लोगों को उनकी क्षमता आदि के अनुरूप नियुक्तियां देनी चाहिये। इसके बाद अनुच्छेद 338 में प्रावधान है कि एक विशेष अधिकारी नियुक्त किया जायेगा जिसे अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आयुक्त कहा जायेगा, जो प्रत्येक वर्ष एक प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगा जिसमें इस संबंध में सरकार की गतिविधियों का उल्लेख होगा। अब यह आवश्यक है और यह सरकार का विचार है—कि संसद को चाहिए कि वह अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए संविधान में उपबंधित सुरक्षोपाय को क्रियान्वित करने के बारे में सरकार की गतिविधियों की जांच करे और यही कारण है कि हमने सोचा था कि इस प्रकार की एक समिति गठित की जाये। अतः इस प्रकार संसद को अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के बारे में सरकार की गतिविधियों पर निरन्तर विचार करते रहने के लिए सक्षम बनाया गया है।

मैं इस बात से बहुत प्रसन्न हूं कि मुझे इस सभा के समक्ष यह प्रस्ताव पेश करने का अवसर मिला है। मुझे इस बात से और भी खुशी है कि—और यह संयोग की बात है—सरकार द्वारा यह कदम गांधी जी के जन्म शताब्दी वर्ष में उठाया जा रहा है। हम सब जानते हैं कि महात्मा गांधी ने अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के उत्थान के लिए सर्वाधिक प्रयास किया था। अब जब संविधान सभा द्वारा यह संविधान बनाया

---

* राज्य सभा में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति की स्थापना के बारे में प्रस्ताव पेश करना: राज्य सभा वाद-विवाद, 21 नवम्बर, 1968, सी॰ 825:25 नवम्बर, 1968, 1271-1280.

गया—मैं संविधान सभा का सदस्य था–तब यह विशेष रूप से देखा गया था कि संविधान में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के हितों की रक्षा के लिए तथा उनके उत्थान के लिए विशेष उपबंध अन्तर्विष्ट किये जाये। ऐसा समझा गया था कि यह एक सरल कार्य होगा। जब संविधान बनाया गया था तब यह उपबंध किया गया था कि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए लोक सभा में तथा विधान सभाओं में स्थानों का आरक्षण 10 वर्ष की अवधि के लिए किया जायेगा। बाद में इस अवधि को बढ़ाने की आवश्यकता महसूस की गई और इसलिए यह अवधि बढ़ाई गई। अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के हितों की रक्षा करने के लिए संविधान में तीन या चार ठोस उपबंध हैं। उदाहरण के लिए अनुच्छेद 17 में उपबंधित है कि "अस्पृश्यता का अंत किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है।"

अनुच्छेद 335 में कहा गया है:—

"संघ या किसी राज्य के कार्यकलापों से संबंधित सेवाओं और पदों के लिए नियुक्तियां करने में, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के दावों का प्रशासन की दक्षता बनाए रखने की संगति के अनुसार ध्यान रखा जाएगा।"

फिर अनुच्छेद 46 भी है जो कि राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के अन्तर्गत आता है, और जहां तक सरकार तथा संसद का संबंध है, नीति के निदेशक तत्वों के उपबंधों में मूल कर्तव्यों का समावेश है। यदि संविधान के भाग 3 में ऐसे अनुच्छेद है जिनमें प्रत्येक व्यक्ति को मूल अधिकार दिये गये हैं तो मेरे विचार में संविधान के भाग 4 में अर्थात राज्य की नीति के निदेशक तत्वों में यह अधिकथित है कि प्रशासन तथा संसद के मूल कर्त्तव्य क्या होंगे।

अनुच्छेद 37 में ऐसा ही अधिकथित है।

अनुच्छेद 46 में कहा गया है:—

"राज्य, जनता के दुर्बल वर्गों के, विशिष्टता, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी संरक्षा करेगा।"

ये उपबंध तथा पदों का आरक्षण करने जैसे अन्य उपबंध संविधान में मुख्यतः इसलिये अन्तर्विष्ट किये गये थे क्योंकि संविधान सभा के अधिकतर सदस्य, हालांकि इसमें अनूसुचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के अधिक सदस्य नहीं थे, इस बात पर

विशेष जोर दे रहे थे कि भारतीय समुदाय में व्याप्त इस अभिशाप को समाप्त किया जाये। यह एक ऐसा अभिशाप है जो वर्षों से, शताब्दियों से, हजारों वर्ष से व्याप्त है अर्थात हमारी जनता विभिन्न जातियों तथा विभिन्न समुदायों में बंट गई और उनमें से कुछ लोग अछूतों, पंचमाओ आदि के रूप में अलग कर दिये गये। इस बुराई की जड़ इतनी गहरी है कि हम देखते हैं कि इनमें से कुछ लोगों द्वारा ईसाई धर्म या सिख धर्म या इस्लाम धर्म अपनाने के बाद भी, जबकि ये धर्म, जातिप्रथा को नहीं मानते, उन्हें उन्हीं जातियों का माना जाता है जिनसे वे धर्म परिवर्तन से पूर्व संबंधित थे। उदाहरणार्थ, मैंने मंगलौर में ऐसे ईसाई देखें है जो स्वयं को ब्राह्मण कहलाने में अपना गौरव समझते हैं। मैंने अपने राज्य केरल में ऐसे ईसाई देखें है जो यह कहते हैं कि वे पुलाया ईसाई हैं—पुलाया का अर्थ है अनुसूचित जाति का व्यक्ति। मुझे उनकी इस बात में कोई गल्ती नजर नहीं आती। इस बुराई की जड़े इतनी गहरी हैं, यह यहां हजारों वर्षों से है, कि अधिकाधिक प्रयासों के बावजूद केन्द्र की सरकारें तथा राज्यों की सरकारें इस बुराई को पूर्णतः समाप्त करने में सफल नहीं हो सकी हैं।

इस समय मैं सभा को यह याद दिलाना चाहता हूं कि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के बारे में बहुत सी बातें ऐसी हैं जो राज्य सरकारों की कार्यकारी शक्तियों के अन्तर्गत आती हैं। केन्द्रीय सरकार का संबंध केवल संघ सेवाओं में तथा संघ राज्य क्षेत्रों की सेवाओं में नियुक्तियां करने तक है। मैंने यह बहुत ध्यान से सुना है कि सभी लोग अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लोगों के हितों के प्रति चिंतित हैं। मैं इस अवसर पर किसी विशेष राजनीतिक दल की आलोचना नहीं करना चाहता और न ही ऐसा दावा करना चाहता हूं कि किसी विशेष राजनीतिक दल ने इस संबंध में कोई अन्य दलों की अपेक्षा अधिक कार्य किया है। कांग्रेस दल, जिससे मैं संबंधित हूं अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के उत्थान में बहुत रूचि रखता है। वास्तव में संविधान सभा में 90 प्रतिशत से अधिक सदस्य कांग्रेस के थे। केरल के मेरे मित्र श्री केशवन ने जो अब मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी में हैं और जो कुछ ही समय पहले तक कांग्रेस में मेरे साथ थे, ऐसे दो महानुभावों का, श्री सी० केशवन और श्री आर० शंकर का उल्लेख किया है जो पिछड़े समुदाय के हैं और जो केरल के मुख्य मंत्री बने थे। यह मैंने इसलिए कहा है क्योंकि यहां उपस्थित बहुत से सदस्य इस संबंध में नहीं जानते हैं। उन्हें कांग्रेस दल ने, जो उस समय बहुमत में था, केरल का मुख्य मंत्री बनाया था। यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि इस संबंध में कांग्रेस दल किसी से पीछे नहीं है और बल्कि वह चाहता है कि इन समुदायों का उत्थान हो। यहां और भी कई दल हैं। श्रीमान, जनसंघ, जिससे आप सम्बन्धित हैं, जहां तक में समझता हूं यह दल भी चाहता है कि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों की स्थिति में सुधार आये। जहां तक

स्वतन्त्र पार्टी का संबंध है, मुझे एक ऐसा उदाहरण ज्ञात है जब स्वतन्त्र पार्टी ने पिछले आम चुनाव में केरल में अनुसूचित जाति के एक उम्मीदवार को सामान्य निर्वाचन क्षेत्र में खड़ा किया था। मैं इनमें से किसी भी दल के प्रति, साम्यवादी, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, आदि, किसी प्रकार का कोई संदेह व्यक्त नहीं करना चाहता। ये सभी दल चाहते हैं कि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों की स्थिति में सुधार आये। फिर इस वाद-विवाद के दौरान हम एक दूसरे पर आक्षेप क्यों लगाये? श्री केशवन ने यह भी कहा है कि कांग्रेस दल किसी हरिजन को भारत का प्रधान मंत्री क्यों नहीं बनाता? इसके उत्तर में मैं उनसे यह प्रश्न करता हूं, कि केरल में उनका दल सता में है फिर भी उन्होंने एक नम्बूदरी को, जो जाति व्यवस्था में ऊंचे स्थान पर आता है, मुख्यमंत्री क्यों बनाया और किसी हरिजन को क्यों नहीं बनाया।

मैं यह कहने का प्रयास कर रहा हूं कि पूरे भारत में प्रत्येक समुदाय में चाहे यह केरल या महाराष्ट्र या बंगलौर या उत्तर प्रदेश में रहने वाले स्वर्ण हिन्दुओं का समुदाय हो या दलित वर्ग हो या पिछड़ा वर्ग हो, ऐसे लोग हैं जो इस उच्च सिद्धांत में विश्वास करते हैं कि जातिप्रथा समाप्त की जाये और अस्पृश्यता दूर की जाये। यह वास्तविक स्थिति है और सभी राजनैतिक दल भी उस प्रयास से सहमत हों। यह मेरा अनुरोध है।

अब में संविधान के उन उपबंधों का उल्लेख करता हूं जिनका उद्देश्य अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों को लाभ पहुंचाना है इसमें हमें कितनी सफलता मिली है, इस मामले की जांच करने के विचार से समाज कल्याण विभाग, जिसने स्वयं अपने को अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के संरक्षक के रूप में गठित किया हुआ है ने एक समिति नियुक्त की है जिसका नाम एलायापेरूमल समिति हैं यह समिति साक्ष्य लेने जगह-जगह जाती रही हैं। हम यह देखना चाहतें हैं कि अनुच्छेद 17 और इस अनुच्छेद के तहत बनाये गये विधान के अनुसार अस्पृश्यता कितनी समाप्त हुई है मेरा आशय इस मामले में उन सदस्यों को लाने का नहीं है जिन्होंने यह कहा कि भारत में ऐसे खण्ड तथा स्थान है जहां अभी भी अस्पृश्यता है। हम यह देखना चाहते हैं कि वहां अस्पृश्यता किस सीमा तक है। इसलिए एलायापेरूमल समिति का गठन किया गया है। मैं इस मामलें में इस सभा के किसी ऐसे सदस्य से नहीं उलझना चाहता हूं जिसने देश के कतिपय भागों में हरिजनों पर किये गये विभिन्न अत्याचारों का उल्लेख किया है। मैं उनका भी बचाव नहीं चाहता हूं जिन्होंने ऐसे अत्याचार किये हैं। यह हम सभी के लिए लज्जा की बात है कि संविधान के 18 वर्ष बाद और यहां तक कि महात्मा गांधी के जन्म शताब्दी वर्ष में भी हमारे देश में ऐसी घटनायें घटी। अब मैं यह भी कहना चाहता हूं कि ऐसे मामलें रहे हैं कि अनुच्छेद 335 के होने के बावजूद भी संघ सेवाओं

और राज्य सेवाओं में नियुक्त किये गये अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के व्यक्तियों की संख्या पर्याप्त नहीं है। अयोग्यता और अदक्षता आदि के आधार पर बहुत से लोगों को भर्ती नहीं किया जाता है।

श्रीमन्, मेरा यह विचार है कि योग्यता किसी समुदाय विशेष का एकाधिकार नहीं है मैं ऐसे ब्राह्मणों को भी जानता हूं जो प्रतिभाशाली है मैं ऐसे भी ब्राह्मणों को जानता हूं जो मूर्ख हैं। मैं ऐसे भी ईसाईयों को जानता हूं जो प्रतिभाशाली है जबकि अन्य इतने प्रतिभाशाली नहीं है। मेरा सम्पर्क ऐसे हरिजनों से भी है जिनमें से बहुत से बहुत प्रतिभाशाली है और बहुत से प्रतिभाशाली नहीं है। अतः यह विभिन्न समुदायों में योग्य और अयोग्य व्यक्तियों का वितरण है। अतः हमने यह निर्णय किया है कि इस मामलें में यह देखना चाहिए कि अनुच्छेद 335 के इस निर्देश का कितना कार्यन्वयन किया गया है। हम इसके बारे में बहुत सावधान हैं मेरा विश्वास है और मेझे पूरा भरोसा है कि यहां उपस्थित प्रत्येक सदस्य मेरी इस बात से सहमत होगा कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की कठिनाईयों को दूर करने तथा उन्हें ऊपर उठाने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि हम उन्हें शिक्षित करें। शिक्षा के बराबर कोई उपाय नहीं है। शिक्षा से ही उनका उत्थान होगा और उनमें उनके साथ हो रहें अन्यायों के प्रति जागरूकता पैदा होगी।

अतः केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा उठाये गये कदमों में से एक कदम यह भी होना चाहिए कि अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के अधिक से अधिक लड़के और लड़कियों को शिक्षा प्रदान की जाये।

वर्ष 1964-65 में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति दोनों के मिलाकर मैट्रिक-पूर्व छात्रों के पंजीकरण की संख्या 9572105 थी और मैट्रिकोत्तर छात्रों के पंजीकरण की संख्या 4,82,733 थी और मैट्रिकोत्तर और मैट्रिक-पूर्व दोनों के पंजीकरण की कुल संख्या 1,00,54,868 थी। यह छात्र जनसंख्या की 15.3 प्रतिशत है।

इतना अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों को उदारतापूर्वक छात्रवृत्तियां देने के परिणामस्वरूप हुआ है। जहां तक मेरी जानकारी है भारत के किसी भी राज्य में इन जातियों के छात्रों से फीस नहीं ली जाती है। इसके अलावा सरकारें बहुत ही उदारता से छात्रवृत्तियां देती है। और मैं यहां यह दावे के साथ कह सकता हूं और सभा को यह आश्वासन दे सकता हूं कि भारत सरकार को अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों को छात्रवृत्तियां देने के लिए आवश्यक धनराशि देने में कोई हिचकिचाहट नहीं होगी।

वर्ष 1964-65 में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के 6,16,866

सदस्यों को मैट्रिक-पूर्व छात्रवृत्तियां दी गई और 1,08,024 सदस्यों को मैट्रिक उपरान्त छात्रवृत्तियां दी गई। यदि आप या कोई अन्य व्यक्ति यह कहे कि ये छात्रवृत्तियां पर्याप्त नहीं हैं तो मैं उसे मानने के लिए तैयार हूं और छात्रवृत्तियों के माध्यम से उन्हें कुछ और देने के लिए अधिक धन उपलब्ध कराऊंगा।

महोदय, वर्ष 1967-68 में विदेशों में अध्ययन करने के लिए अनुसूचित जातियों के 50 लड़कों को छात्रवृत्तियां दी गई हैं। मैं यही कहूंगा कि यह संख्या कम है और हमें इसमें वृद्धि करनी चाहिए। विदेशों में अध्ययन करने के लिए अनुसूचित जनजातियों के 43 लड़कों को छात्रवृत्तियां दी गई हैं। जहां तक होस्टल आवास का संबंध है, वर्ष 1966-67 में होस्टल में रहने वाले छात्रों की संख्या 2.50 लाख है। भूमि और आवास मुख्यतः एक ऐसा विषय है जो राज्य सरकार के अधीन आता है किन्तु हम राज्य सरकारों को प्रोत्साहित करते हैं। वर्ष 1965 में अनुसूचित जातियों के लोगों को 3,12,325 एकड़ और अनुसूचित जनजातियों के लोगों को 1,32,884 एकड़ भूमि दी गई।

इसके अलावा जहां तक भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय सिविल सेवा में नियोजन का संबंध है, अनुसूचित जनजातियों द्वारा वास्तव में भरी गई आरक्षित रिक्तियों की संख्या 172 है। मैं तो यही कहूंगा कि उनके लिए आरक्षित सभी स्थान भरे नहीं गये हैं। अनुसूचित जनजातियों द्वारा भरे गये आरक्षित स्थानों की संख्या 59 है। इसके अतिरिक्त अन्य श्रेणियों, जैसे श्रेणी-1, श्रेणी-2, श्रेणी-3 और श्रेणी-4 में भी नियुक्त किये गये लोगों की संख्या काफी अधिक है।

अब हम इस बात पर विचार कर रहे हैं कि यह सुनिश्चित करने के लिए क्या किया जा सकता है कि उनके लिए वास्तव में आरक्षित स्थान उन्हें ही उपलब्ध हों।

इस समय हम यही कर रहे हैं। समाज कल्याण विभाग जो इस समय मेरे और यहां उपस्थित मेरे सहयोगियों के नियंत्रणाधीन है, अपने आप को देश के अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों का संरक्षक बनाना चाहता है और जिस समिति की अब हम स्थापना करना चाहते हैं उसका उद्देश्य आलोचना के द्वारा या अन्यथा, समाज कल्याण विभाग के कार्यकलापों में सहायता करना है।

मैंने अपने उद्घाटन भाषण में समिति के कृत्य पढ़ कर नहीं सुनाये। समिति के कृत्यों का अवलोकन करने से यह पता चलेगा कि सरकार विशेष रूप से यह सुनिश्चित करना चाहती है कि संसद को अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के विषय में भारत सरकार की आलोचना करने, उसका मार्गदर्शन करने और उस पर नियंत्रण करने के लिए पूर्ण शक्तियां मिलें।

समिति के कृत्य इस प्रकार हैं-

1. अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के आयुक्त द्वारा पेश किये गये प्रतिवेदनों पर विचार करना। इस समिति का यह कर्तव्य होगा।

2. समिति द्वारा प्रस्तावित उपायों पर संघ सरकार और संघ राज्य क्षेत्रों के प्रशासनों द्वारा की गई कार्यवाही के बारे में दोनों सभाओं को प्रतिवेदन देना।

मैं ये कृत्य इसलिए बता रहा हूं क्योंकि यह एक संसदीय समिति है। यह समिति राज्य सरकारों द्वारा की गई कार्यवाही के बारे में प्रतिवेदन नहीं दे सकती। मुझे आशा और विश्वास है कि राज्य भी अपनी-अपनी विधान सभाओं में इस प्रकार की समितियां नियुक्त करेंगे ताकि वे समितियां की गई कार्यवाही के बारे में अपनी-अपनी सरकारों को प्रतिवेदन दे सकें। मैं आशा करता हूं कि इस सभा के सदस्य राज्य सरकार द्वारा उस प्रकार की समितियां नियुक्त करने के मामले में अपने प्रभाव का यथाशक्ति प्रयोग करेंगे।

अनुच्छेद 335 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए संघ सरकार द्वारा अपने नियंत्रणाधीन सेवाओं तथा पदों में, जिनमें सरकारी उपक्रमों, संविहित और अर्द्ध-सरकारी निकायों तथा संघ राज्य क्षेत्रों में नियुक्तयां भी शामिल हैं, अनुसूचित जातियां तथा अनुसूचित जनजातियों का समुचित का समुचित प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए किये गये उपायों पर विचार करना।

4. संघ राज्य क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी कार्यक्रमों के कार्यकरण के बारे में दोनों सभाओं को प्रतिवेदन देना।

5. संघ राज्यक्षेत्र प्रशासनों सहित संघ सरकार के क्षेत्राधिकार के भीतर आने वाले अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण से संबंधित सभी मामलों पर सामान्यतः विचार करना और उनके बारे में दोनों सभाओं को प्रतिवेदन देना।

6. ऐसे अन्य मामलों पर विचार करना जो समिति उचित समझे या जो सदन अथवा अध्यक्ष द्वारा उसे विशेष रूप से निर्दिष्ट किये जायें।

महोदय मेरा यह दावा है कि समिति के इन कृत्यों का मसौदा तैयार करते समय हमने यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया है कि इन समितियों को अधिकतम शक्तियां प्रदान की जाये और ये शक्तियां केवल नाम के वास्ते अथवा किसी व्यक्ति को प्रसन्न करने के वास्ते ही न हों। वे सरकार के कार्यों के संबंध में उतनी ही शक्तिशाली होंगी जितनी कि लोक लेखा समिति या प्राक्कलन समिति हैं क्योंकि वे सरकार के क्रियाकलापों की

आलोचना कर सकती हैं तथा उनके बारे में टिप्पणी कर सकती हैं। अतः मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि इस अवसर का, जब हम सभा के समक्ष यह सकंल्प लेकर आये हैं, उपयोग उन सब बातों के बारे में बोलने के लिए किया है जिनका मैं उत्तर देने की स्थिति में नहीं हूं। भारतीय समुदाय और विशेष रूप से हिन्दू समुदाय की अन्तारात्मा को जगाना होगा। हमारी अन्तरात्मा चेतनाशून्य हो गयी है और महात्मा गांधी ने सबसे महत्वपूर्ण कार्य यही किया था कि उन्होंने हमारी अन्तरात्मा और भावनाओं को जगाने की चेष्टा की थी महोदय मुझे इस बात की बहुत प्रसन्नता होगी और मैं इस बात के लिए आभारी रहूंगा यदि इस वाद-विवाद से अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों की दशा के बारे में महात्मा गांधी के जन्म दिन की शताब्दी के इस वर्ष में हम पुनः अपने अन्तर्विवेक जगा सकें। महोदय, मुझे आशा है कि यह संकल्प सर्वसम्मति से पारित होगा।

दो

लोक सभा और राज्य विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों और आंग्ल-भारतीयों के लिए सीटों के आरक्षण की अवधि बढ़ाना*

इस संशोधन का उद्देश्य अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और आंग्ल भारतीयों के लिये आरक्षण की अवधि को अगले दस वर्ष के लिए बढ़ाना है। सदन को याद होगा कि प्रारम्भ में जब यह आरक्षण का प्रावधान हमारे संविधान में किया गया था तो तब यह सोचा गया था कि आरक्षण की अवधि 10 वर्ष के लिये होनी चाहिये। अर्थात् यह अवधि 26 जनवरी, 1960 को समाप्त हो जानी चाहिये। परन्तु वर्ष 1959 में हमने सोचा कि आरक्षण के लिये दस वर्ष की अवधि पर्याप्त नहीं है और संविधान में "दस" शब्द के स्थान पर "बीस" शब्द प्रतिस्थापित कर संशोधन किया जाना चाहिये। इस प्रकार आरक्षण की अवधि 26 जनवरी, 1970 तक के लिये हो जायेगी। अब सरकार का यह विचार है कि मैं समझता हूं कि सदन की भी यह राय है कि हमारे देश में अभी वह स्थिति नहीं आई है जब कि हम अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिये आरक्षण की व्यवस्था को समाप्त कर दे। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के व्यक्तियों की स्थिति सुधारने, और देश की शेष जनसंख्या के बराबर उनका स्तर करने के हमारे प्रयासों में पूर्णतः सफलता नहीं मिली है। जहां तक मेरा संबंध है मैं नहीं समझता कि हिन्दु समाज द्वारा अनुसूचित जातियों के व्यक्तियों में जो हीन भावना पैदा की है वह दो अथवा तीन दशकों में दूर की जा सकती है। एक ऐसी व्यवस्था जिसके अन्तर्गत हमारे समुदाय के एक वर्ग को अछूत समझा जाता था, एक ऐसी व्यवस्था जिसके अन्तर्गत हमारे समुदाय के एक वर्ग के लिए एक ऐसे शब्द का जैसे "पंचामास" का इस्तेमाल किया गया, जिसका हम अब इस्तेमाल नहीं करते हैं. एक ऐसी व्यवस्था जिसके अन्तर्गत हिन्दू समुदाय के एक वर्ग को पृथक रखा गया और जो

*संविधान (23वां संशोधन) विधेयक लोक सभा में प्रस्तुत करते हुए लोक सभा वाद-विवाद, 8 दिसम्बर, 1969 का० 280-290।

व्यवस्था हजारों वर्ष तक कायम रही और अभी भी यह कहना संभव नहीं है कि हमने उनमें समानता की भावना पैदा कर दी है।

इस सदन में अनेक अवसरों पर सदस्यों ने वक्तव्य दिये हैं जिसमें सदस्यों ने शिकायत की है कि देश के अनेक भागों में छुआछूत व्याप्त है और विशेष रूप से गांवों में इन व्यक्तियों को अभी भी अलग रखा जाता है और अनुसूचित जातियों के संबंध में जब भी कभी सदन में चर्चा की जाती है तो इस सदन में शिकायतें की जाती हैं कि इस संबंध में पर्याप्त नहीं किया गया है; हो सकता है; हमें अधिक करना चाहिए था परन्तु हमने जो कुछ किया, जहां तक कि संविधान के मौलिक अधिकारों संबंधी अध्याय में की गई यह घोषणा कि छुआछूत को समाप्त किया जाता है, जहां तक कि छुआछूत करने को एक अपराध मानने के लिए कानून बनाने के बावजूद देश के विभिन्न भागों में यहां-वहां छुआछूत प्रचलित है। दिल्ली जैसे बड़े शहरों में छुआछूत नहीं की जाती है। संभवतः हम से अधिकांश, विशेषतौर पर संसद में हम सभी छुआछूत को नहीं मानते हैं।

अनुसूचित जातियों के विषय में मैंने जो कुछ कहा है, वह अनुसूचित जन-जातियों के लिये भी लागू हो जाता है मेरे विचार से सदन सर्वसम्मति से इस बात से सहमत होगा कि हमें भारतीय समुदाय को यह देखने का एक और अवसर प्रदान करना चाहिये कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को एक ऐसे स्तर तक ऊपर उठाया जाये ताकि वे यह महसूस करें कि वे भी शेष समुदाय के समान हैं और शेष समुदाय अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को अपने भाई-बंधुओं की भांति गले लगायेंगे। अधिक सरल रूप में कहा जाये यही इस संविधान संशोधन का उद्देश्य है।

इसके अलावा आंग्ल-भारतीयों का मामला है, जब संविधान सभा संविधान के प्रावधानों पर चर्चा कर रही थी, तब संविधान सभा की अल्पसंख्यक समिति, जिसमें देश के अनेक सम्मानित नेता शामिल थे, इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि आंग्ल-भारतीयों का भारतीय समुदाय में एक विशेष स्थान है और यह कि जब तक हम उनका संसद और राज्य विधानसभाओं में नामांकन नहीं करेंगे तब तक इस समुदाय के सदस्यों के लिये भारत की संसदीय व्यवस्था में अपना योगदान देना संभव नहीं हो पायेगा। अतः यह प्रावधान किया गया कि राष्ट्रपति द्वारा लोकसभा के लिये दो सदस्यों का नामांकन किया जायेगा और जहां तक राज्य विधानसभाओं का संबंध है उनमें इनका नामांकन राज्यपाल के विवेक पर निर्भर करेगा कि क्या वह कोई सदस्य नामांकित करें अथवा नहीं, और यदि करें तो उनकी संख्या कितनी हो इस प्रावधान की अवधि भी 26 जनवरी, 1970 को समाप्त हो जायेगी। अब यह प्रस्ताव किया गया है कि आंग्ल-भारतीयों के नामांकन की

अवधि को इस शर्त के साथ दस साल के लिये और बढ़ा दिया जाये कि राज्यपाल द्वारा राज्य विधान सभाओं के लिये आंग्ल-भारतीयों का नामांकन उनके स्वविवेक पर नहीं छोड़ा जाये और किसी भी राज्य विधान सभा के लिये केवल एक सदस्य का नामांकन किया जाये। अब, जैसा कि यह है, यह संख्या कितनी भी हो सकती है। मैं जानता हूं कि कतिपय राज्य विधान सभाओं में आंग्ल-भारतीय सदस्यों की संख्या तीन अथवा चार भी है। यही इस संशोधन का उद्देश्य है।

** ** **

हमारे संविधान में यह प्रावधान है कि आंग्ल-भारतीयों का नामांकन निचले सदन (लॉअर हाऊस) के लिए किया जाना चाहिए। परन्तु मेरा यह प्रयास है कि आंग्ल-भारतीयों के नामांकन के संबंध में पिछले 20 वर्षों से जो कुछ किया जा रहा है उसे जारी रखा जाये, जो इस संबंध में अब मैं यह कहना चाहता हूं कि अबसे आगे यह नामांकन ऊपरी सदन के लिए किया जायेगा जिससे यह मामले को बहुत ही कमजोर कर देता है* हमने यह निचले सदन के लिए किया है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि आंग्ल-भारतीय समुदाय से लोकसभा के लिए किया गया नामांकन सफल रहा है। लेकिन यह एक भिन्न बात है। वे एक अलग समुदाय के रूप में जाने जाते हैं तथा आज भी छुआछूत के परिणाम भुगत रहे हैं।

जहां तक अनुसूचित वर्गों जिन्हें पहले दलित वर्ग के रूप में जाना जाता था की आर्थिक स्थिति का प्रश्न है, वहां भी अनेक कठिनाइयां हैं।

प्रायः ऐसी शिकायत प्राप्त होती है कि शिक्षा के लिए दी जा रही छात्रवृत्तियां पर्याप्त नहीं हैं अथवा लोक सेवाओं में प्रदान किए जाने वाले अवसर पर्याप्त नहीं हैं।

हाल ही में, गृह मंत्रालय द्वारा नियुक्त एक समिति, जिसकी अध्यक्षता गृह मंत्री ने की थी, की बैठक में हमें यह जानने का अवसर मिला कि सरकारी सेवाओं में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लोगों के लिए कितने प्रतिशत आरक्षण है। हम अभी भी निर्धारित लक्ष्य से काफी पीछे हैं। सभी श्रेणियों की सरकारी सेवाओं में अनुसूचित जातियों के जितने प्रतिशत लोग नियुक्त हैं वह उनकी जनसंख्या के प्रतिशत की तुलना में काफी कम है यह एक कड़वा सच है।

इस वास्तविकता के कारण कि अनुसूचित जातियों के लोग अच्छा जीवन स्तर यापन करने में समर्थ नहीं हो सके हैं; प्रतियोगात्मक परीक्षाओं में ऐसा देखा जाता है कि वे

---

*श्री मलराज मघोक ने पूछा था कि आंग्ल-भारतीयों के लिए नामांकन केवल ऊपरि सदन (अपर सदन) तक ही सीमित क्यों नहीं रखा जाये।

अन्य प्रतियोगियों की बराबरी नहीं कर पाते हैं। परीक्षाओं और अध्ययन आदि के संबंध में छात्रों को अपनी स्थिति सुधारने के लिए कुछ हद तक अच्छी आर्थिक स्थिति का होना जरूरी है। यदि घर के आसपास का माहौल अनुकूल न हो तो कोई छात्र चाहे वह ब्राह्मण समुदाय का ही क्यों न हो स्कूल तथा कालेजों में अन्य छात्रों के साथ बराबरी नहीं कर सकता। यह बातें सभी जानते हैं।

जहां तक चुनावों का संबंध है चुनावों के मामलों में आरक्षण का बहुत महत्व है। मैं नहीं समझता कि भारत के किसी भी राज्य में ऐसी स्थिति हो गई है जिसमें अनुसूचित जातियों का कोई सदस्य सामान्य निर्वाचन क्षेत्र से जीत कर आया हो। यह एक परखी हुई बात है।

जब इस मामले पर एक समिति में अनौपचारिक रूप से चर्चा की गई तो यह प्रश्न उठाया गया कि क्या राजनीतिक दल एक साथ बैठकर यह निर्णय नहीं ले सकते कि वे अनुसूचित जातियों के उम्मीदवारों को सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों से चुनाव लड़ाएं। मुझे विश्वास है विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं को ऐसा कर पाना संभव होगा।

चुनाव के समय दुर्भाग्यवश उम्मीदवार की जाति देखी जाती है। हमारा समाज रूढ़िवादी तथा जातिवादी समाज है, और यदि किसी सामान्य निर्वाचन क्षेत्र में जहां पर कांग्रेस अथवा कम्युनिस्ट पार्टी अथवा जनसंघ काफी लोकप्रिय है और वहां से यदि अनुसूचित जातियों अथवा अनुसूचित जनजातियों का कोई उम्मीदवार खड़ा कर भी दिया जाता है तो वहां से उच्च समुदाय का कोई निर्दलीय उम्मीदवार खड़ा हो जाता है और वह चुनाव जीत जाता है। चाहे राजनीतिक दल सभी प्रयास क्यों न कर लें।

यह सभी राजनीतिक दलों की कमजोरी है आखिरकार, किसी राजनीतिक दल की सदस्यता क्या है? विधान सभा अथवा संसदीय निर्वाचन क्षेत्र में जिनमें लाखों मतदाता होते हैं— राजनीतिक दलों की सदस्यता सीमित होती है। आप प्रत्येक सदस्य को विहप जारी कर सकते हैं लेकिन आप विश्वासपूर्वक यह नहीं कह सकते कि लोग भी उसे मानेंगे।

आंग्ल-भारतीय अब भारतीय समुदाय का एक हिस्सा बन चुके हैं। यद्यपि तकनीकी तौर पर उन्हें आंग्ल-भारतीय के नाम से जाना जाता है लेकिन, हो सकता है कि वे सभी आंग्ल-भारतीय न हों। उनमें से कुछ यूरेशियन हो सकते हैं। अतः लोगों के एक विशेष समूह, जिनकी एक विशेष सभ्यता है, को यह नाम दिया गया है। हमारे भारतीय समुदाय में विभिन्न समुदाय के लोग हैं। इसमें हिन्दू हैं। हिन्दुओं में भी विभिन्न जातियां और समुदाय हैं। हमारे यहां अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां हैं। इसके अलावा यहां मुस्लिम हैं और उनमें भी विभिन्न सिद्धान्तवादी हैं। हमारे यहां ईसाई लोग हैं। उनमें

भी बहुत से वर्ग हैं। कैथोलिक हैं। प्रोटैंसटैंट्स और कैथोलिकों में लेटिन् कैथोलिक हैं, सिरियन कैथोलिक इत्यादि हैं। इस विभिन्नता में हमारे यहां एक एकता है जो भारतीयता की एकता है और आंग्ल-भारतीय समुदाय को संविधान बनाने के समय कुछ कारणों से मान्यता प्रदान की गई थी।

अनुच्छेद 330 में -अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण का उल्लेख किया गया है। अन्य लोग भी हैं। यह कतिपय वर्गों से संबंधित विशेष उपबन्ध नामक अध्याय के अन्तर्गत आता है। उन सभी को एक साथ रखा गया है इसमें अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों, आंग्ल-भारतीय के लोग भी हैं; क्योंकि यह विशेष वर्गों अर्थात आंग्ल-भारतीय अनुसूचित जनजातियों और अनुसूचित जातियों से संबंधित है।

जैसे अनुसूचित जाति का उम्मीदवार सामान्य निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित नहीं हो सकता, वही बात आंग्ल-भारतीयों पर भी लागू होती है। अपवाद हो सकते हैं लेकिन मैं यह नहीं समझता कि मेरे मत से सदस्य असहमत होंगे।

संविधान सभा ने इस विषय पर अल्पसंख्यक समिति में विचार विमर्श किया था। ये ही परिस्थितियां जो वर्ष 1950 में थीं, जबकि संविधान में घोषणा की गई थी कि आंग्ल-भारतीयों के लिए नामांकन द्वारा अलग प्रतिनिधित्व की व्यवस्था होनी चाहिए और यह कि अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लिए सुरक्षित निर्वाचन क्षेत्र निर्धारित किये जाने चाहिएं जहां से वे चुने जायेंगे आदि—आज भी वही परिस्थितियां जारी हैं।

इन तथ्यों को देखते हुए, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं।

हिन्दी भाषा को प्रोत्साहन*

संघ के संविधान द्वारा यथा निर्दिष्ट दायित्वों में से एक संपूर्ण भारत वर्ष में हिन्दी भाषा का प्रसार करना है। संविधान के अनुच्छेद 351 में ऐसा कहा गया है। दक्षिण भारतीय राज्यों में संघ का यह दायित्व दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा द्वारा काफी सीमा तक प्रभावी ढंग से पूरा किया जा रहा था और अब भी पूरा किया जा रहा है। अतः यह अच्छा होगा यदि इस महान संस्थान को राष्ट्रीय महत्व के संस्थान का दर्जा प्रदान करने के लिए संघ सरकार को एक विधान बनाना चाहिए। अतः मैं इस विधेयक का दिल से समर्थन करता हूं।

लेकिन इसके साथ ही स्वतंत्रता के पश्चात इतने वर्षों के बाद भी हिन्दी अभी तक वास्तविक रूप में भारत की राष्ट्रभाषा नहीं बन पाई है। अभी भी मतभेद चल रहे हैं, अभी भी दक्षिणी राज्यों में हिन्दी भाषा न जानने वाले लोगों की संख्या बहुत अधिक है। यहां तक कि दक्षिण से आने वाले संसद सदस्य हिन्दी भाषा ठीक से नहीं समझ पाते हैं। अब समय आ गया है जब केन्द्र सरकार इस स्थिति पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करे और इस पर विचार करे कि ऐसा क्यों होता है। मेरे विचार से इन वर्षों में संघ सरकार हिन्दी भाषा के प्रचार के मामले पर गंभीर नहीं रही है। यदि ऐसा हुआ होता तो आज जो स्थिति है वह नहीं होती।

इसके साथ ही, महोदय, इस सदन में विशेष रूप से दक्षिण भारत से आने वाले सदस्यों को हिन्दी न बोल सकने के कारण परेशानी उठानी पड़ती है। मैं स्वयं उन सत्तर लाख छात्रों में से हूं जिन्होंने हिन्दी प्रचार सभा के संरक्षण में पढ़ाई की है। मैंने हिन्दी का प्रारंभिक ज्ञान प्राप्त किया था और हिन्दी प्रचार सभा द्वारा संचालित दो तीन परीक्षाएं भी उत्तीर्ण की थीं, परन्तु अभी भी कतिपय कमियों के कारण हमें हिन्दी बोलने में कठिनाई होती है।

इन कठिनाइयों के अलावा हिन्दी भाषा के प्रसार के मामले में दक्षिणी राज्यों की सरकारों की कठिनाइयों की ओर देखिए। केरल राज्य में पिछले दस या बारह वर्षों से स्कूलों और सभी शैक्षणिक संस्थानों में हिन्दी एक अनिवार्य विषय है। अतः इन सभी वर्षों

*श्री एम० सी० छागला द्वारा रखे गए दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा विधेयक पर चर्चा में हस्तक्षेप करते हुए; लोक सभा वाद विवाद, 29 अप्रैल, 1964, पृष्ठ 13454—58।

के दौरान केरल में हिन्दी अध्यापक सभी संस्थानों में हिन्दी पढ़ाते थे और यदि संविधान कहता है कि संघ सरकार का यह उत्तरदायित्व है कि हिन्दी भाषा का प्रसार करे तो यह मैं आपको सौंपता हूं। श्रीमान क्या यह देखना संघ सरकार का दायित्व नहीं है कि इन हिन्दी अध्यापकों को दी जाने वाली एक-एक पाई का भार केन्द्र वहन करेगा? इसलिए मैं इस अवसर पर यह मांग करता हूं कि दक्षिणी राज्यों के प्राथमिक तथा मध्यमिक स्कूलों में हिन्दी अध्यापकों के रूप में नियुक्त व्यक्ति तथा दक्षिणी राज्यों के कालेजों में प्रोफेसरों तथा व्याख्याताओं के रूप में नियुक्त व्यक्ति केन्द्रीय सरकार के कर्मचारी हों या कम से कम संघ सरकार उनकी पूरी तनख्वाह दे। अन्यथा संघ सरकार संविधान द्वारा उसको सौंपे गए कर्त्तव्यों का निर्वाह नहीं कर रहा है। महोदय, यह अनुच्छेद 351 का पहला खण्ड है और मैं शिक्षा मंत्री का ध्यान विशेष रुप से उसे ओर खींचना चाहता हूं:

"हिन्दी भाषा के प्रचार को बढ़ाना संघ सरकार का दायित्व होगा" ओर उस दायित्व को संघ सरकार ने इन वर्षों में नहीं निभाया। अतः मैं इस अवसर पर उस मामले को मंत्रालय की जानकारी में ला रहा हूं।

दूसरे, हम इस सभा में तथा बाहर सदस्यों द्वारा जो हिन्दी भाषी राज्यों से हैं; घृणास्पद स्थिति तक किए गए दावों को सुन रहे हैं कि इस सभा की कार्यवाही हिन्दी में होनी चाहिए कि हिन्दी का प्रसार होना चाहिए। मैं इस मामले पर बात कर रहा था। अतः हमें हिन्दी का प्रसार क्यों करना चाहिए? महात्मा गांधी तथा बाद में संविधान सभा ने ऐसा क्यों कहा कि हिन्दी का प्रसार पूरे भारत में होना चाहिए। क्या यह हिन्दी भाषा के सुधार के लिए है? क्या यह हिन्दी भाषी राज्यों से आने वाले लोगों के मन में जो इस प्रकार के गौरव की भावना भरने के लिए है कि उनके राज्य की भाषा का प्रसार पूरे भारत में किया जा रहा है? क्या यह बात ऐसी नहीं है कि संघ सरकार संसद तथा विषेष तौर पर हिन्दी भाषी राज्यों से आने वाले लोगों का यह दायित्व है कि वे अन्य लोगों को यह महसूस करवाएं कि भारत की पूरी जनसंख्या का यह दायित्व है कि हिन्दी पूरे भारत में फैले और इस संबंध में मैंने सम्मानित सदस्य डा० गोविंद दास को हिन्दी के बारे में बोलते हुए सुना। वे हिन्दी के प्रसार की आवश्यकता के बारे में बोलने के किसी अवसर को नहीं चूकते। ऐसा करते समय वे अनुच्छेद 351 यथा प्रदत्त दायित्व हिन्दी का प्रसार निभाते हैं जो संघ का दायित्व है और संघ में संसद भी शामिल है। किन्तु इस संबंध में मैं उनसे तथा अन्य लोगों से भी अनुरोध करूंगा कि वे अनुच्छेद 351 के अनुवर्ती खण्डों को पढ़ें। क्या किसी ने भी इस मामले में कोई ध्यान दिया है? इसमें लिखा है:-

"हिन्दी भाषा के प्रसार को बढ़ावा देना संघ सरकार का यह दायित्व होगा"।

पुनः-

"इसके विकास के लिए ताकि यह भारत की मिली-जुली संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके तथा हिन्दुस्तानी और भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त विशेषताओं, स्वरूपों, शैलियों और अभिव्यक्तियों को, प्रभावित किए बगैर इन्हे आत्मसात करके इसे समृद्ध कर सके।"

इस तरह से भारत का संविधान भारत की अन्य भाषाओं की अभिव्यक्ति की शैलियों को आत्मसात करके हिन्दी भाषा को समृद्ध करने के लिए हमें आदेश और निर्देश देता है।

अब ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी के वे कतिपय विद्धान, जो हिन्दी भाषी राज्यों से चुनकर आते हैं, संविधान के इस निर्देश को भूल रहे हैं। कभी जब हम अंग्रेजी में बोलते हैं, या कभी जब हिन्दी न जानने वाला कोई मंत्री अंग्रेजी में बोलता है, तो हम सभा में यह शोरगुल सुनते हैं "हिन्दी में बोलिए"। मैं यह मानता हूं कि यह शोरगुल संविधान के अनुच्छेद 351 के निर्देश के कारण किया जाता है। परन्तु मैं यह प्रश्न पूछता हूं: क्या उनमें से कोई तमिल का प्रयोग भी जानता है? संविधान में यह व्यवस्था भी है अर्थात अन्य भाषाओं की शैलियों से संग्रह करके हिन्दी भाषा को समृद्ध किया जाए।

महोदय, आखिरकार जब दक्षिणी राज्यों से आए हम लोगों में से कुछ लोग यह कहते हैं कि हिन्दी भारत भर में फैलनी चाहिए हम इसका समर्थन करते हैं तो इसका कारण यह नहीं है कि अन्य भाषाएं पिछड़ी हुई हैं। वे इस बात को इस कारण नहीं कहते कि मलयालम, तमिल, कन्नड़ अथवा तेलुगु या बंगला अथवा इनमें से किसी भी भाषा का साहित्यिक भण्डार हिन्दी से कम समृद्ध है। वे ऐसा इसलिए कहते हैं कि हिन्दी भारत के लोगों के एक बहुत बड़े वर्ग की भाषा है, इसीलिए हम इसका समर्थन करते हैं। संभवतः, विश्व में ऐसा कोई देश नहीं है ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जहां पर अधिसंख्य लोग साथ-साथ रहते हुए एक ही भाषा बोलते हैं जैसा कि हिन्दी के मामले में है। भारत में यह एक लाभ है। इसी कारण से हम इस विचार का समर्थन करते हैं कि हिन्दी राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिए। लेकिन मैंने जिस बात का उल्लेख किया है वह भी आवश्यक है। लेकिन हमारे कतिपय मित्र यह भूल जाते हैं और इस भूल जाने से ही यह भावना फैलती है कि हिन्दी का प्रसार होना चाहिए, बिना इस बात को समझे हुए कि हिन्दी का प्रसार क्यों होना चाहिए। इस बात से कभी-कभी कुछ मुसीबतें पैदा हो जाती हैं।

अतः इस अवसर पर मैं माननीय उप मंत्री, जो मेरी समझ से हिन्दी के बहुत बड़े विद्धान हैं, और इस सभा में हिन्दी राज्यों के अन्य सदस्यों को याद दिलाना चाहूंगा कि हमें ऐसा सद्भाव और सोहाद्रपूर्ण माहौल बनाना चाहिए। जिससे भारत की सभी संस्कृतियों और भाषाओं तथा उनकी अभिव्यक्ति की शैलियों को हिन्दी भाषा में आत्मसात किया जाएगा ताकि भारत में सभी वर्गों के लोग इसे स्वीकार कर सकें।

उड़ीसा में अकाल की स्थिति और भुखमरी से मौतें*

श्री गोविंद मेनन: यह सच है कि उड़ीसा के कुछ भागों में अभाव जैसी स्थिति है। योजना आयोग के सलाहकार के नेतृत्व में एक केन्द्रीय दल ने फरवरी, 1966 में उड़ीसा का दौरा किया था और अन्य बातों के अलावा, उसने कहा है कि वास्तविक समस्या राहत कार्य आरम्भ किए जाने की है। इससे ग्रामीणों की क्रय-शक्ति में वृद्धि होगी और वे उचित दर दुकानों पर उपलब्ध सस्ती दरों पर खाद्यान्नों की खरीद कर सकेंगे। राज्य सरकार ने पहले ही 6,744 राहत कार्य आरम्भ किए हैं और नवीनतम आंकड़ों के अनुसार इन कार्यों पर लगभग 3,80,000 लोग कार्यरत हैं। स्थिति यह है कि इस कठिनाई के वर्ष में भी, राज्य के भीतर खाद्यान्न की उपलब्धता ऐसी है कि लोगों को उचित स्तर पर खाद्य उपलब्ध कराना .....

अप्रैल मध्य तक राज्य सरकार के पास, राज्य की आतंरिक वसूली से एक लाख टन से अधिक का स्टॉक उपलब्ध था। इसमें से 15,000 टन विशेष रेलगाड़ियों द्वारा प्रभावित क्षेत्रों को भेजा गया है।

अतः केन्द्र से चावल की सप्लाई की कोई आवश्यकता नहीं है और उड़ीसा से चावल की सप्लाई के बारे में भी कोई मांग नहीं की गई है। केन्द्र उड़ीसा को गेहूं का आवंटन कर रहा है और इस वर्ष गेहूं के आवंटन में काफी वृद्धि की गई है। वर्ष 1965 में कुल 67,300 टन गेहूं की सप्लाई की गई थी और अप्रैल, 1966 के अन्त तक 53,700 टन का अब तक आवंटन किया जा चुका है। मई में आवंटन को बढ़ाकर 22,200 टन किया गया है।

गेहूं के सामान्य आवंटन के अतिरिक्त, केन्द्रीय सरकार ने वृद्धों, बीमारों और अशक्तों तथा अन्य व्यक्तियों में मुफ्त वितरण के लिए उड़ीसा सरकार को 2000 टन गेहूं आवंटित किया है। इस प्रयोजन के लिए और 3,000 टन गेहूं उपलब्ध कराया जा रहा है। इसके अतिरिक्त राज्य सरकार ने प्रत्येक ब्लाक मुख्यालय को ऐसे बूढ़ों और अशक्तों

*29 अप्रैल, 1966 को श्री मधु लिमये के ध्यानाकर्षण प्रस्ताव का उत्तर देते हुए; लोक सभा वाद-विवाद, कालम 13998, 14000, 14018, 14020-21, 14023—28.

और बच्चों में मुफ्त वितरण के लिए 10 क्विंटल चावल आवंटित किया है जो इन अभावग्रस्त-राहत कार्यों में काम कर मजदूरी प्राप्त नहीं कर सकते हैं। शिशुओं की माताओं और 0-14 वर्ष की आयु वर्ग के बच्चों में वितरण के लिए उड़ीसा को 3,600 टन दुग्ध-चूर्ण (मिल्क पॉउडर) आवंटित किया गया है। और अधिक मात्रा में दुग्ध-चूर्ण उपलब्ध होने पर, उड़ीसा को दुग्ध-चूर्ण और मात्रा में उपलब्ध कराया जायेगा। पत्तनों से 1,000 टन दुग्ध चूर्ण पहले ही भेजा जा चुका है। 175 टन बिस्कुट और एक मिलियन मल्टी-विटामिन की गोलियां भी आवंटित की गई हैं। वर्ष 1965-66 में अभावग्रस्त राहत कार्यों के लिए 45 लाख रुपये की वित्तीय सहायता प्रदान की गई है। वर्ष 1966-67 में खाद्यान्न वसूली के उद्देश्य से राज्य सरकार को एक करोड़ रुपये की अग्रिम राशि दी गई है। राज्य सरकार को और अधिक राहत कार्यों के लिए एक करोड़ रुपये की और राशि मंजूर करने की घोषणा की गई है।

मई के आरम्भ में, सलाहकार योजना आयोग के नेतृत्व में एक दल राज्य के प्रभावित क्षेत्रों का दौरा करेगा और उन क्षेत्रों में व्याप्त स्थिति का नये सिरे से मूल्यांकन करेगा और यह निर्धारण करेगा कि कितनी और केन्द्रीय सहायता की आवश्यकता है और यह सुझाव देगा कि इस हेतु क्या अन्य कदम उठाये जाने चाहिएं।

जहां तक उड़ीसा के राज्यपाल के इस बयान का संबंध है कि उन्होंने माता-पिता द्वारा परित्याग किए गए दो बच्चों को देखा है और माता-पिता द्वारा अपने बच्चों को बेचे जाने सम्बन्धी समाचारों का संबंध है, उड़ीसा सरकार द्वारा की गई जांच से पता चला है कि राज्यपाल द्वारा प्रेस को ऐसा कोई वक्तव्य नहीं दिया गया था। दौरे के दौरान, राज्यपाल ने कालाहांडी जिले में भेला गांव के अनाथालय को भी देखा था। इसमें माता-पिता द्वारा अस्थायी तौर पर छोड़े गए 68 बच्चों के अलावा दो अनाथ बच्चे भी थे। ये माता-पिता या तो राहत-कार्य पर गए हुए थे या निःशुल्क सहायता प्राप्त करने गए हुए थे।

उड़ीसा सरकार से अनुरोध किया गया था कि वे भुखमरी से हुई मौतों के बारे में रिपोर्ट भेजे। उड़ीसा सरकार ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि कालाहांडी, बोलनगिर, धनकनाल, सम्बलपुर और कटक जिलों में 19 लोगों के भूख से मरने के तथाकथित समाचार प्राप्त हुए हैं। उड़ीसा सरकार द्वारा इन सभी मामलों में जांच की गई और पाया गया कि ये सभी समाचार गलत थे।

माता-पिता द्वारा गरीबी के कारण अपने बच्चों को बेचे जाने के बारे में श्री हेम बरुआ के आरोप प्राप्त हुए, राज्य सरकार को इनकी सच्चाई सुनिश्चित करने के लिए लिखा गया। सरकार को जो तथ्य प्रेषित किए गए थे, मैंने उनका उल्लेख अपने वक्तव्य में किया है। मैंने यह भी कहा था कि अगले एक-दो दिनों में एक उच्च स्तरीय दल वहां भेजा जा रहा है। खाद्य मंत्री ने भी कल कहा था कि वह भी अकाल-ग्रस्त क्षेत्रों का दौरा करेंगे।

मैंने यह भी कहा था कि उचित अकाल राहत कार्य के लिए उड़ीसा सरकार को धनराशि उपलब्ध कराने के लिए सभी सम्भव प्रयास किए जा रहे हैं। माननीय सदस्य श्री द्विवेदी ने कहा है कि उड़ीसा से चावल वापस लिया जा रहा है। यह सही नहीं है.....

वहां पर्याप्त मात्रा में चावल है। समस्या चावल खरीदने के लिए पैसे की है। इसी उद्देश्य से राहत कार्य आयोजित किए जा रहे हैं। राज्यपाल के वक्तव्य में भी, जिसका कि उल्लेख किया गया है, केन्द्रीय सरकार से सहायता प्राप्त करने की कोशिश किये जाने का उल्लेख किया गया है। अभी तक हमें कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ है। इस से पहले भी हमने अपनी ओर से इस प्रयोजन के लिए उड़ीसा सरकार को दो करोड़ रुपये उपलब्ध कराए हैं। उड़ीसा को पर्याप्त मात्रा में गेहूं की सप्लाई की जा रही है। अगर और अधिक मात्रा में गेहूं भेजा जाना है तो, इसके लिए भी सरकार तैयार है। मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि उड़ीसा की स्थिति के बारे में सरकार और माननीय सदस्यों के बीच कोई भी विवाद नहीं है। सरकार की भी यह हार्दिक इच्छा है कि वहां अकाल की स्थिति समाप्त हो.....

*** ***

यह सहायता खाद्यान्न अर्थात गेहूँ के रूप में और धन के रूप में दी गई है। *जहां तक मुझे पता है उड़ीसा सरकार का इससे संबंधित कोई अनुरोध केन्द्रीय सरकार के विचारार्थ नहीं पड़ा है। परन्तु उड़ीसा की स्थिति के संबंध में केन्द्रीय सरकार द्वारा स्वयं प्राप्त की गई जानकारी के आधार पर एक-दो दिन के भीतर एक दल वहां भेजा जायेगा ताकि सरकार इस संबंध में आगे कार्यवाही करने के बारे में निर्णय ले सके। मैं सभा को आश्वासन देता हूं कि इस संबंध में सभी आवश्यक कार्यवाही की जायेगी।

*** ***

मेरे पास इस समय अन्य राज्यों से संबंधित तथ्य उपलब्ध नहीं हैं।** जहां तक उड़ीसा की स्थिति का संबंध है, सरकार के पास उपलब्ध समस्त जानकारी मेरे उस

---

*29 अप्रैल, 1966 को श्री मुध लिमये के ध्यानाकर्षण प्रस्ताव का उत्तर देते हुए; लोक सभा वाद-विवाद कालम 13998, 14000, 14018, 14020-21, 14023-28.

**श्री ओंकार लाल बेरवा के इस वक्तव्य का उत्तर देते हुए कि बिहार, मध्य प्रदेश और राजस्थान भी अकाल की चपेट में हैं।

वक्तव्य में मौजूद है। मैं माननीय सदस्यों द्वारा सभा में कही गई बातों का विरोध नहीं करना चाहता हूं। परन्तु सरकार को भी तो राज्य सरकार से रिपोर्ट प्राप्त होनी है। हम इन अकालग्रस्त जिलों की वास्तविक स्थिति का पता लगाऐंगे और स्थिति में सुधार लाने के लिये यथासंभव राहत कार्य किये जाऐंगे।

*** ***

यह दल एक-दो दिन में रवाना हो रहा है और विशेष रूप से उड़ीसा के माननीय सदस्यों को चाहिए कि वे इस दल के समक्ष वस्तुस्थिति प्रकट करें और यदि केन्द्रीय सरकार को इस संबंध में आगे कदम उठाने की आवश्यकता पड़ी तो वह अवश्य कदम उठायेगी।

अधिकारी दल वहां जा रहा है और सभा के माननीय सदस्यों से मेरा अनुरोध है कि उड़ीसा की स्थिति के बारे में उनके पास यदि कोई प्रत्यक्ष जानकारी है तो वे उसे इस दल के समक्ष रख सकते हैं। सरकार इस क्षेत्र में किसी संसदीय समिति को भेजने पर विचार नहीं कर रही है।